बंदी-युग

[राष्ट्र के बंदी-जीवन और मुक्ति-साधना का चित्र]

प्रणेता

श्री बैजनाथसिंह

एम० ए०

प्रकाशक

साधना-सदन

इलाहाबाद

ढाई रुपये

प्रकाशक

साधना-सदन

प्रयाग

'सुमन' जी का जीवन-दायक साहित्य

१. वेदी के फूल	॥
२. जीवन-यज्ञ	२)
३. हमारे नेता	२)
४. हमारे स्व० राष्ट्रनिर्माता	३॥)
५. कठघरे से पुकारती वाणी	१)
६. जीवन-सूत्र	१)
७. आनन्द-निकेतन	२॥)

साधना-सदन

इलाहाबाद

मुद्रक
पं० जयराम भार्गव
युनिवर्सल प्रेस,
१६, शिवचरनलाल रोड,
प्रयाग

समर्पण

मेरे चिरस्वतंत्र अभिमानी,
अपराजेय सजग सेनानी,
गूँज रही जग के कण कण में,
तेरे यश की अमर कहानी।

ओ संघर्ष-प्रवर, ज्वालामय,
तरुण-हृदय-सम्राट, तपस्वी।
प्रतिभा - कर्म - विवेक-समन्वित,
शुद्ध, बुद्ध, औ धीर मनस्वी।

रण में, कारा में, शासन में,
राष्ट्र-शक्ति तुमने पहचानी।
तेरे कर-कमलों में अर्पित,
बन्दी-युग की करुण कहानी॥

सर्ग-सूची

आरम्भ मे . आत्म-निवेदन और कथांश

आत्म-निवेदन

'बंदीयुग' राष्ट्र के बन्दी जीवन की विवशताओं और उसके मुक्ति के प्रयत्नो का आख्यात्मक चित्र है। सन् १९४२ की आत्म-सभूत जन-क्रान्ति एक आकस्मिक दुर्घटना नहीं थी, वह तो राष्ट्र की कई दशाब्दियों की पीडा और उसके विद्रोह की अन्तर्ज्वाला की अभिव्यक्ति थी। बन्दी-युग में एक सामान्य कथा का स्थूल आधार लेकर, यही पीडा व्यक्त हुई है।

सन् '४२ मे १० अगस्त से ११ अक्तूबर तक बाहर रहकर कार्य करते हुए इस रचना के लेखक को क्रान्ति के अनेक रोमांचक रूपो का दर्शन मिला। सर्वान्तर्यामी गुप्तचरो के पंजे मे पडकर जब उसे जेल की शरण मिली, तो क्रान्ति काल की अद्भुत अनुभूतियो और जेल-जीवन की विचित्रताओ से उसे सारे राष्ट्र के बन्दीपन पर विचार करने का अवसर भी मिला।

'सी' क्लास के कैदी होने, तथा बौद्धिक चेतनाशील व्यक्तियों से अलग रक्खे जाने के कारण, बुद्धि और हृदय को भोजन नहीं मिल पाता था। जैसे अनशन करने वाले व्यक्ति का आमाशय दो एक दिन के बाद उसके रक्त-मांस को ही सुखा-गला कर अपना कार्य करता है, उसी प्रकार लेखक ने अपने अपेक्षा-कृत सीमित अनुभवो, विचारों और शब्दो-द्वारा एक मकडी का जाला बुनना आरंभ किया।

बडी विवशताएँ और बडे प्रतिबन्ध थे। कागज और पेंसिल तक रखना जुर्म था। पुस्तको का दर्शन भी न मिलता था। प्रेरणा, प्रोत्साहन या निर्देश देने वाले कोई पढे-लिखे साथी भी न थे। फिर भी नीम कीसीकों से दीवार पर कुछ स्फुट रचनाएँ लिखी ही गई। वे जेल-

जीवन के दुःख-दर्द के विषय मे थीं। एक दिन 'बी' क्लास के अपने नज़रबन्द मित्र श्री रोहिताश्वकुमार अग्रवाल एम० ए० से सम्पर्क हो गया। उन्होंने स्फुट रचनाओं को एक कथा से सम्बद्ध करके सौ सवा सौ छन्दों के एक खण्ड काव्य के निर्माण का सुझाव दिया और एक छोटी सी कापी तथा पेंसिल का भी प्रबन्ध कर दिया। उनके सुझाव पर विचार करते-करते कल्पना क्रमशः विस्तृत होती गई और उस प्रबन्ध-काव्य ने वर्तमान रूप धारण कर लिया।

विश्ववन्द्य बापू ने सरकार से किये हुए पत्र-व्यहार की भूमिका मे सारे भारत की एक बड़े जेल से उपमा दी थी। इस धारणा ने बन्दी-जीवन-सम्बन्धी रचनाओ की भूमि को व्यापक बना दिया और 'बन्दी-युग' एक व्यक्ति की सीमित अनुभूति न होकर सारे समाज की या युग की व्यथा-कथा हुई। इस कथा का चिर अतीत तो पृष्ठभूमि मे पड़ गया है, परन्तु गत दस वर्षों के जीवन का एक धुँधला सा चित्र दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसका नायक वस्तुतः राष्ट्र है। राष्ट्रीय जीवन के विविधि अंगो को कथा-क्रम में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, यह समावेश कहाँ तक सफल हुआ है, विज्ञ पाठक ही बता सकते हैं।

एक व्यक्ति के जीवन का विकास क्रम-बद्ध कथा के प्रवाह में आ सकता है, परन्तु राष्ट्र के समूचे जीवन को सरलतापूर्वक एक प्रबन्ध प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। कथा का मुक्तक स्वरूप कही-कहीं खुल जाता है और प्रबन्ध शिथिल दिखलाई पड़ता है। लेकिन इस प्रबन्ध का निर्माण कला की किसी प्रचलित धारणा पर आधारित न होने से स्वरूप में एक अपनी ही विचित्रता है। प्रगीत मुक्तको (lyrics)

के इस युग में यह वर्णनात्मक रचना केवल राष्ट्रीय जीवन के प्रत्यक्ष चित्रण के आधार पर जनता के ध्यान की अधिकारिणी है।

लिखने की परिस्थितियाँ निराली थीं। जाँघिए से लिपटी हुई चार अंगुल की पेंसिल और छोटे कागज के टुकडे को लेखक साथ रखता था। सुतली कातते समय, मूँज बटते समय या बाद में कालीन काटते समय वह पंक्तियाँ सोचता जाता था और आधे मिनट का अवकाश लेकर एक पंक्ति लिख लेता था। इसी प्रकार संध्या को या सवेरे काम पर जाने से पहले, जमादार की आँख बचाकर वह कुछ पंक्तियाँ लिख लिया करता था। इस प्रकार के लेखन से रचना में एक प्रकार की गद्यात्मकता आ गई है, क्योंकि भावधारा का प्रवाह इन बन्धनों में निरन्तर और स्वाभाविक नहीं हो पाता था। इसके अतिरिक्त कथावस्तु वस्तुतः गद्य-विवेचना का विषय थी परन्तु उपन्यास के लिए अधिक विस्तृत स्थान और कागज की आवश्यकता थी, जिसे पा सकना लेखक के लिए असंभव था।

आर्डिनेन्स कोर्ट्स के न्याय-बल के रद हो जाने के कारण, आधी सजा काटते ही, लेखक अकस्मात् जेल से छूट गया और रचना अधूरी ही रह गई। बाहर के बटे जेल में उसे इस पर सोचने का भी अवकाश न मिला। ढाई वर्ष बाद गर्मी के अवकाश में शिमला शैल में भाई गंगासिंह रावत की स्नेह-छाया में केवल तीन सप्ताह में फिर यह शीघ्रता से लिखी गई। इसलिए इसकी अपूर्णताएँ स्पष्ट हैं और उनका कारण भी व्यक्त है। किन्तु लेखक का ध्येय केवल उत्कृष्ट या आदर्श रचना उपस्थित करने का नहीं, न तो स्थायी साहित्य के ही निर्माण की डींग हाँकने का है। वह तो चाहता है केवल राष्ट्र-राम के जीवन का स्मरण और वन्दन। इसलिए भाषा या भावों की शिथिलता

या तोतलेपन की उसे विशेष चिन्ता नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें चित्रित घटनाएँ काव्य-कल्पना नहीं शुद्ध सत्य पर आधारित हैं और उनमें जीवन का बल है।

इस बीच देश स्वतंत्र हुआ और नवीन उत्तरदायित्व और नवीन समस्याएँ आईं। परन्तु हमारे बीच से हमारे सारे कष्टों का समाधान करनेवाला हमारा बापू छीन लिया गया। फैले हुए अन्धकार में हमे सँभाल-सँभाल कर पैर रखना होगा और अतीत के संघर्षों की याद हमे बल और धैर्य देगी। श्रद्धेय बापू के महान् क्रान्ति-युग का हमे बार बार अध्ययन करना होगा। यह रचना उनकी पवित्र स्मृति द्वारा कृतार्थ हुई है, इसका लेखक को कुछ सन्तोष है।

इस रचना के योग्य जीवन की पृष्ठभूमि बनाने में जिन श्रद्धेय भाई श्रीधर जी मालवीय का प्रमुख हाथ था, जो उदारता, सौम्यता, सरलता और देवत्व की मूर्ति थे, जो महामना महर्षि मालवीय के विमलतम प्रकाश थे, जिनसे जननी को बडी बडी आशाएँ थीं और जो इस लेखक के आध्यात्मिक आश्रय और 'बन्दी-युग' के प्रकाशन के प्रश्रय थे, आज वे हमारे बीच नहीं यह हमारा घोर दुर्भाग्य है। उनके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता से लेखक विनम्र है। आदरणीय श्री रामनाथ 'सुमन' जी ने लेखक को जो प्रोत्साहन और सक्रिय सहायता दी है उसके लिए वह हृदय से आभारी है।

—बैजनाथसिंह

१५ अगस्त, १९४८
प्रयाग

कथांश

बन्दीयुग की कथा का आरम्भ दो विद्यार्थियों के संवाद से होता है। विद्यार्थी जीवन के बौद्धिक वातावरण मे सम्पन्न मध्य वर्ग मे उत्पन्न कुँवर राजेन्द्र और अपेक्षाकृत दीन विपन्न सुदामाशुक्ल मे देश की परिस्थिति पर बातचीत चल पड़ती है। राजेन्द्र कुँवर देश के अतीत का सिंहावलोकन करता है और सुदामाशुक्ल वर्ग-विषमता को देश के पतन का कारण बताता है। अन्त मे राजेन्द्र गाँववाले किसानों और मजदूरों की स्वभावगत बुराइयाँ बताते हुए देश की दुरवस्था का दोष उन्हीं के सिर मढ़ता है। सुदामा का भावुक हृदय व्याकुल हो उठता है। और वह राजेन्द्र को ग्राम जीवन के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए निमन्त्रित करता है।

राजेन्द्र भावुक, विचारवान और सदवृत्त युवक है। वह सुदामा के साथ गाँव की ओर जाते हुए सड़क कूटनेवालों को देखता है और एक दीन एक्केवान के भी सम्पर्क मे आता है। उनके करुण जीवन के चित्र राजेन्द्र के हृदय को अभिभूत करते हैं।

गाँव मे पहुँचकर वह एक गरीब कर्जदार के दुख की कहानी सुनता है और देखता है उन पूँजीपतियों और जमींदारों का खूनी पंजा जिनसे तत्कालीन सरकार सहयोग करती है।

उस गाँव मे दो-एक दिन बिताते हुए विस्तृत रूप से गाँव का निरीक्षण करता है। गाँव की दीपावली का दृश्य और शरद का प्राकृतिक चित्र उसे आकर्षित करते हैं। अभाग्यवश श्राद्ध का एक चित्र भी

उसके सामने आता है, और वह देखता है कि रूढियों ने गॉव के जीवन को खोखला कर दिया है और उसमें जीवन नहीं रह गया है।

शिक्षा और सास्कृतिक पुनरुद्धार के प्रति तात्कालिक सरकार की उदासीनता ही इन बुराइयों के लिए उत्तरदायी है।

प्रसंगवश राजेन्द्र बडे दिनों के अवकाश में सुदामा को अपने यहॉ निमंत्रित करता है और इस प्रकार सुदामा को नागरिक और संभ्रान्त वर्ग के जीवन का परिचय मिलता है। किन्तु वह वैभव पराभव के बीच परवशता की छाया व्याप्त देखता है जो तत्कालीन बन्दीपन के कारण सर्वत्र दिखलाई पडता था वहॉ रहते हुए सुदामा एक डाक्टर, प्रोफेसर और बैरिस्टर के जीवन का भी दर्शन करता है और उनके व्यक्तित्व पर भी परतन्त्रता की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है। एक प्रदर्शनी के वर्णन-द्वारा देश की आर्थिक और औद्योगिक परिस्थिति पर भी विचार करने का अवसर मिलता है।

राजेन्द्र एक बार फिर गॉव की ओर जाता है। और उसे लगान वसूल करनेवाले जमींदार और कर्ज उगाहनेवाले महाजन के आदमी मिलते हैं। एक नवयुवक के विवाहोत्सव में सम्मिलत होने का भी अवसर उसे मिलता है और किसानों के कठिन श्रम तथा पडे पुजारियों और गुरुओं की श्रमहीनता का भी अनुभव होता है।

सुदामा और राजेन्द्र कालेज में प्रवेश करते हैं। उनके जीवन को एक नवीन चेतना मिलती है। राजेन्द्र रचनात्मक कार्यक्रम मे लगता है और सुदामा मजदूरों के संघटन और हडताल द्वारा आशिक संघर्ष करके उनको नई शक्ति देता है। मजदूर आन्दोलन के विकास का यह एक छोटा सा चित्र है। इस बीच युद्ध आरभ हो चुका था और नये प्रश्न विद्यार्थियों को भी व्यथित करने लगे थे।

बापू ने बड़ी प्रतीक्षा की किन्तु अभिमानी शासन ने ध्यान न दिया। अन्त मे ७-९ व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन आरभ करना पड़ा। श्री विनोबा भावे और श्री ब्रह्मदत्त राय के बाद राष्ट्र के प्रहरी प० जवाहरलाल नेहरू बन्दी हुए। और प० नेहरू को गोरखपुर के विशेष न्यायालय द्वारा ४ वर्ष के कठोर श्रमपूर्ण कारावास का द ड मिला। न्यायाधीश के सामने उनका वक्तव्य स्मरणीय है। दूसरी ओर कुछ विश्वविद्यालय प्रतिभाशील छात्रों को केवल सरकारी यंत्र के लिए ढाल रहे थे।

उन विद्यालयों मे विद्यार्थियों का जीवन सगीत, नाट्य, वाद-विवाद आदि से विभूषित हो रहा था। युद्ध की अग्नि बढ रही थी पर व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शेषप्राय था। उसके अन्त के साथ सन् ४२ की क्रान्ति का बीजारोपण हुआ। जापान के आक्रमण और उसकी तीव्रगामी विजय से देश की मानसिक स्थिति चंचल हो रही थी, अँग्रेज अपना बन्धन और जकड़ रहे थे। बापू से न रहा गया। उन्होंने 'भारत छोडो' का नारा दिया।

बम्बई मे अखिल भारतीय काग्रेस की सभा मे नेताओं ने नये सग्राम का निश्चय किया। ६ अगस्त की क्रान्तिकारिणी कथा बम्बई मे आरभ हुई और उससे विस्तृत विध्वस हुआ।

प्रतिमा प्रयाग की छात्राओं मे एक नवीन क्रान्ति-प्रभा थी। उसने तथा राजेन्द्र ने प्रयाग के आन्दोलन का नेतृत्व किया। गोलियों का सामना हुआ और वीर पद्मधर का बलिदान।

क्रान्ति की धारा गॉव की ओर बढ चली। राजेन्द्र बन्दी थे। प्रतिमा गुप्त आन्दोलन का सचालन कर रही थी और सुदामा क्रान्ति की ज्वाला देश के कोने कोने में फैला रहा था। बलिया और बैरिया थाने का उसे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। बिहार और बगाल की क्रान्ति का दर्शन करते हुए वह अन्त में बन्दी बन गया।

हवालात मे क्रान्तिकाल के विभिन्न चित्रों की भयकर स्मृति से वह संतोष लेता था और बन्दीयुग मे दमन के वे चित्र इतिहास के काले पृष्ठों के प्रतीक हैं।

वह हवालात से जेल जाता है और वे अनुभव ही भविष्य के पूर्ण स्वाधीन नागरिकों के लिए ऐतिहासिक महत्त्व के होंगे।

जेल जीवन के बीतते-बीतते बन्दी युग भी बीत चलता है। और देश की आशा के प्रतीक बापू जेल से बाहर आते हैं। यह देश के मुक्ति-पथ का स्वर्णिम इतिहास है। इसके उपरान्त युद्ध का अन्त होते होते राजनैतिक और वैधानिक प्रगति तीव्र गति से चल पड़ती है। १५ अगस्त उसका चरमोत्कर्ष है।

प्रतिमा गुप्त आन्दोलन के साथी रामू से जीवन में आबद्ध होती है। सुदामा शुक्ल और राजेन्द्र उनके प्रति अपना सद्भाव प्रकट करते हैं और सभी निश्चय करते हैं कि नवयुग के उदय के लिए वे पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

यहाँ बन्दीयुग समाप्त होता है, स्वतंत्रता के युग का उदय होता है। और देश को अवसर मिलता है कि जिन सीमाओं मे उसका जीवन बन्दी था, उनसे वह ऊपर उठे।

शेष कथा हमारी स्वाधीनता के संग्राम की एक अत्यन्त विषादमयी गाथा है और बंदी-युग का अन्त जिस गान्धी युग द्वारा हुआ उसका भी अवसान इस करुणकथा में हो जाता है। इस कथा मे इतिहास के प्रति आस्था और राष्ट्र के प्रति श्रद्धा है। साहित्य और इतिहास के इस समन्वय में जनता वर्तमान सामाजिक जीवन का चित्र देख सकती है।

बंदी-युग

जिज्ञासा

सर्ग १

दिशा-किशोरी ने शशि-मुख पर, नीला अवगुण्ठन डाला।
क्रमशः हुआ तिरोहित उसके, दिव्य वदन का उजियाला।
तारों के झिलमिल प्रकाश की, किन्तु अमिन किरणें लेकर।
झलक रहा था चिर-रहस्य-मय, उसका यौवन मतवाला ॥ १ ॥

जीवन का व्यापार शिथिल था, शांत हुई जग की हलचल।
छात्रालय का एक कक्ष था, विद्युत्दीपों से उज्ज्वल।
धवल वस्त्रमय, नवल उपकरण, पुस्तक-चित्र-छटा से घिर।
विविध समस्या पर विचार-रत, थे दो सुधी युवक केवल ॥ २ ॥

उन्नत भाल, विशाल भुजायें, गौर तेजमय मुख-मण्डल।
अवयव पुष्ट रक्त-प्रतिभासित, था राजेन्द्र-स्वरूप सरल।
छोटा कद, निर्बल तन, श्यामल, युवक सुदामा मेधावी।
अनुभव-ज्ञान, विवेक ओजमय, था उसका व्यक्तित्व सबल ॥ ३ ॥

दीपमालिका के उत्सव का, छात्रो को अवकाश मिला।
उनके मन की लहर लहर में, नव-जीवन आकाश खिला।
चले गये थे आस-पास के, बालक अपने अपने घर।
अतः आज इन दो मित्रो को, अधिक विचार-प्रकाश मिला ॥ ४ ॥

"सखे, देश की दशा निहारो, कितना करुण-दुःखद अपमान।
पराधीन पद-दलित देश की, हम कहलाते है सन्तान।
लज्जा नही हमें आती है, जीवित है बनकर भूभार।
भूल सत्य, सपनो के जग में, हम भी फिरते है अम्लान ॥ ५ ॥

"यहाँ विदेशी जन मुट्ठी भर, आकर शासन करते है।
राम-कृष्ण-अर्जुन के वशज, उन्हें देखकर डरते है।
निशि-दिन, श्रम करके हम, जो कुछ धन-मधु है सचित करते।
उससे ये सभ्यताभिमानी, अपनी झोली भरते है ॥ ६ ॥

"फूट वैर के आघातों से, हैं भारत का तन जर्जर।
सदियों के नैराश्य-तिमिर से, मनोज्योति कपित थरथर।
पश्चिम की भौतिकता-लू से, सूखा यह आध्यात्मिक वन।
और दीनता निर्बलता से, हुआ सकल जीवन जर्जर ॥ ७ ॥

"भारत ही था जिसने जग में, सस्कृति-ज्ञान-प्रसार किया।
वसुधा ही कुटुम्ब है अपना, कहा तथा व्यवहार किया।
यवन-हूण, शक सिथियन आये, पारसीक मुस्लिम कितने।
शरण दिया, घर दिया, मिलाया, उन्हें सभ्यता मान दिया ॥ ८ ॥

"ब्राह्मण जन, अतिशय विराग मय, समझे जग झूठा सपना।
डुबो दिया राजन्य वर्ग ने, मदिरा में जीवन अपना।
वैश्य शूद्र अधिकार हीन हो, पशुवत् मूक काटते दिन।
विपुल प्रमादों उन्मादो से, ढहा समाज भवन अपना ॥ ९ ॥

"भारत के सांस्कृतिक कमल के, सत्पराग की छटा रुचिर।
उसके चित्सौरभ की थी जो, दिङ्मण्डल में गंध मधुर।
रस आनन्द सूख वह सारा, हुआ समाप्त सत्य जीवन।
केवल नाम-शेष अब तो है, विद्युत्प्राण बिना यह तन ॥ १० ॥

"अन्त जर्जर देश-दुर्ग पर, शतमुख आक्रम वे दुर्धर।
मुस्लिम दल का नया धर्म मद, हिन्दू-दल का चिर अंतर।
फिर दोनों का मिलन क्रमागत, वैर भाव का पुनरुद्भव।
इसी भाँति हो गया, देश के वैभव का रवि अस्त इधर ॥ ११ ॥

"आया भीषण अंधकार युग, क्षीणतेज अब निज विश्वास।
क्रमशः बुझते दीप शक्ति के, था विनाश ही तो इतिहास।
जनता सोई तिमिर-गर्भ में, शक्ति-हीन नीरव निरुपाय।
द्वीप द्वीप के इधर निशाचर, आये ले छल बल का त्रास ॥ १२ ॥

"एक एक कर हुए तिरोहित, सामन्तों के तारक दल।
माया की रहस्य-छाया में, भूत-प्रेत कुछ हुए सबल।
ठीकेदार जमींदारों की, नव श्रेणी का जन्म हुआ।
'काले साहब क्लर्क-कीट भी, जनमे अगणित नित्य प्रबल ॥ १३ ॥

"भूला भेष, सभ्यता भूली, धँसी गुलामी नस नस मे।
बस चाँदी के कुछ टुकडों पर, हुए स्वदेशी सब वश मे।
मिली उपाधि, मान गारों से, कालो पर गोली बरसी।
बढे जगत में हिन्दुस्तानी, नमक हलाली के यश में॥" १४॥

कहा सुदामा ने, "भाई है, भाव तुम्हारे अत्युत्तम।
भारत के नैतिक विकास का, हुआ दृश्य यह हृदयंगम।
किन्तु ध्यान क्या दिया बताओ, व्यापक देश-निराशा पर?
वर्तमान दुःख-दरिद्रता पर, युवको की अभिलाषा पर? १५॥

"आज स्पष्ट दो वर्ग देश में, धनिक और श्रमजीवी के।
दो धारायें, भुक्खड़-पेटू, और मधुर मधु-पेयी के।
निर्दय वर्ग हिंस्र पशुओ सा, दीनो का न ध्यान रखता।
केवल इसी विषमता का फल, रो रो आज देश चखता॥ १६॥

"अपना पक्ष प्रबल करने को, यहाँ विदेशी सत्ता ने।
रचा वर्ग तालुकदारो का, अँगरेजी बलवत्ता ने।
अधम विवशता से कृषकों की, महाजनो ने जन्म लिया।
पोषक बन, इस शोषक दल ने, शोषण या सहार किया॥ १७॥

"मध्य-वित्त या उच्च वर्ग ने, निज साकेत बसाया है।
परियों प्यालों की लहरो पर, कल्पवृक्ष का साया है।
हास-विलास, विवाद-ज्ञान का उनका क्षेत्र निराला है।
सरकारी रिपोर्ट से मिलती, जन-दुख कथा विशाला है॥ १८॥

जिज्ञासा

"आज हमारा देश दीन है, कायर और तटस्थ बना।
प्रजा निराश, निरक्षर, दुखिया को है केवल दुःख सहना।
धर्म और सन्तोष भाग्य की, खा अफीम हम सोते हैं।
अपर-लोक के सुख-सपनों में, जीवन का बल खोते हैं॥ १६॥

"शिक्षित मध्यम-वर्ग देश का क्षुद्र स्वार्थ में उलझ रहा।
पी सी एस. की मृगतृष्णा मे, अमर-तत्त्व वह समझ रहा।
पढ दर्शन, इतिहास, गणित सब, कर मे लेखिनि-खड्ग लिये।
जनता के सूखे कण्ठों पर, है वह भी निज चित्त दिये॥ २०॥

"राजनीति आरम्भ मात्र है, अभी सुघर मृग-छौना है।
शिक्षित और समृद्ध वर्ग के कर में एक खिलौना है।
स्वतन्त्रता या राष्ट्र-चेतना के ऊँचे ऊँचे नारे।
सोचा क्या, कुछ समझ सकेंगे भूखे-नगे बेचारे? ॥" २१॥

बोले श्री राजेन्द्र बिहँस कर, कुछ गुरुता का भाव लिये।
"बधु, समाज-रोग पर तुमने, नहीं अधिक है ध्यान दिये।
उच्च-वर्ग के प्रति ईर्ष्यामय, लगते भाव तुम्हारे हैं।
पर वे ही इस युग म भाई, नव बल-ज्ञान-सहारे है॥ २२॥

"इस श्रेणी मे दया धर्म है, विद्या-कला-पिपासा है।
आजादी की नई लहर है, उन्नति की अभिलाषा है।
जीवन और प्रगति के लक्षण, केवल इनमें बाकी हैं।
सकल देश पीने वाला है, यही अकेले साकी हैं॥ २३॥

"ये कालिज, ये स्कूल, पार्क-क्लब, उच्च वर्ग ने खुलवाये।
कितने ग्रंथालय मंदिर या, धर्मालय है बनवाये।
इनके चन्दे प्रोत्साहन से, चलती सेवा सस्थायें।
कुशल नियत्रण में होती है, उच्च कलामय रचनायें॥ २४॥

मान रहा हूँ श्रमिक दुःखी है, ये गरीब है वेचारे।
रोग-शोक ऋण-भूख-दोष से, है वे विपदा के मारे।
उच्च वर्ग आनन्दमग्न है, सुखमय जीवन का स्तर है।
धनिक-गरीब, सबल-दुर्बल का यह स्वाभाविक अतर है॥ २५॥

"धनिक-वर्ग ने व्यवसायों मे, निज धन खूब लगाया है।
जमींदार ने अपना वैभव, दूर दूर फैलाया है।
निशि-दिन वे धन के विकास की, चिन्ता में रत रहते है।
नींद-भूख से वंचित रहकर, दुख-सुख कितने सहते है॥ २६॥

"शिक्षा-हित अविरत श्रम करते, स्वास्थ्य और धन खोते हैं।
अथक तपस्या से वर्षों की, सफल कहीं तब होते है।
पूर्व-जन्म-संस्कार, पुण्य से, रुचिर बुद्धि-तन पाते है।
सदाचार-व्यवहार-संग से, धन-यश-विभव कमाते हैं॥ २७॥

श्रम-सचित निधि के प्रति सबको, सहज मोह होता ही है।
भुजबल-अर्जित लक्ष्मी का रस, जग इकला लेता ही है।
सबकी भोजन-वस्त्र मनन की, आवश्यकता न्यारी है।
भाग्य और व्यक्तित्व अलग है, यही विषमता सारी है॥ २८॥

"हम किसान-मजदूर जनों को, दुःखी दीन जब पाते हैं।
देश गुलाम आदि का कारण, धनिकों को बतलाते हैं।
सभी हमेशा निज सुख-दुःख के, पर खुद कारण होते हैं।
हम प्रायः निज करुण-दशा पर दोष और को देते हैं॥"२६॥

कहा शुक्र ने आकुल होकर, "धनिकों का यह धर्म-विधान।
नियति और ईश्वर के बल पर, उनका सुन्दर न्याय-प्रमाण।
मैंने बहुत सुना देखा है, प्रगतिहीन यह तर्क प्रकाश।
ध्रुव है श्रमिक वर्ग की उन्नति" अब बोले फिर कुँवर सहास॥ ३०॥

"मैं विवाद की बात न करता, यह वर्गों की होड नहीं।
मेरी इस अध्ययन दिशा का, तुम सकते हो मोड सही।
आज किसानों मजदूरों के, जीवन में उत्साह नहीं।
देख काम ये जान चुराते श्रम की धरते राह नहीं॥ ३१॥

"जनता में घुन लगा हुआ है, अगणित रोग समाये हैं।
उनकी करुण-दशा के कारण, तुमने नहीं दिखाये हैं।
थोड़े संचय पर इतराते, अपव्यय करने लगते हैं।
झूठी आन-शान पर मरते, 'नहीं जगाये जगते हैं'॥ ३२॥

"ये विवाह अन्त्येष्टि क्रिया में, हा बेखबर उड़ाते हैं।
वाह वाह की सरल चाह में, घातक मधु पी जाते हैं।
रूढ़ि-रीति पर अंध बधिर से, आँख मूँद कर चलते हैं।
जब सर्वस्व गँवा चुकते हैं, खोल आँख, कर मलते हैं॥ ३३॥

"बच्चों को न भेजते पढने, नव-प्रकाश से डरते है।
परंपरा से गला बाँध कर, व्यर्थ डूबते मरते है।
नही सफाई संयम रखते, तन घर की परवाह नही।
उच्च-वर्ग क्या उन्नति-पथ पर इनको सकता लाद कही? ३४॥

"अच्छी शिक्षा सुनने भर को लेते है अवकाश नही।
पुस्तक या अखबार आदि से करते ज्ञान-विकास नही।
खेती से न लाभकर फसलों का उद्योग कराते है।
अर्थ-शास्त्र मे कृषक-दुखों का यही हेतु हम पाते है॥ ३५॥

'देखो तो मजदूर मिलो के कितनी अकड़ दिखाते है।
पीते है शराब औ' ताड़ी रोग अनेक बुलाते है।
पूँजीपति से होड लगाने संघ अनेक बनाते है।
कर हड़ताल भूख से मरते, आश्रित भी दुख पाते है॥ ३६॥

"फिर भी है सुधार आवश्यक, वेतन अधिक दिया जाये।
अपढ किसानो मे, साक्षरता का, विस्तार किया जाये।
पुस्तक दवा न्याय का, व्यापक सफल प्रचार किया जाये।
वस्त्र-सफाई ग्राम-सफाई, पर व्याख्यान दिया जाये॥ ३७॥

"तुमने धनिक और श्रमिकों मे जो अन्तर दिखलाया है।
वर्ग-विषमता को स्वदेश का पतन-हेतु बतलाया है।
उग्र विचार तुम्हारे भाई बस गृह-कलह वढायेंगे।
स्वयं लडेंगे हम आपस में, निज अधिकार न पायेंगे॥' ३८॥

इतना कह राजेन्द्र विजय से, इधर-उधर लख मुसुकाये।
उनके मुख पर गर्व और, सन्तोष-भाव कुछ लहराये।
सुना सुदामा ने विस्मय से, दुख से यह व्याख्यान बडा।
फडके अधर, कण्ठ से विह्वल, भाव नियन्त्रित निकल पडा ॥ ३९ ॥

"है विस्तृत अध्ययन तुम्हारा, पैनी दृष्टि तुम्हारी है।
पर अति ही लहलही मित्र, तव जीवन की फुलवारी है।
ऊसर बजर झाड कँटीले, तुमने खुद न निहारे है।
इसीलिए आदर्श-स्वप्न से, धुँधले भाव तुम्हारे है ॥ ४० ॥

"इस समाज का साज आज, अति ही उलझा पेचीदा है।
उखडे हुए तार सब झीने, बिगडा हुआ कसीदा है।
ग्रंथों मे इसकी प्रतिलिपियाँ, नकली और पुरानी है।
अनुभव-सत्य-हीन तव वर्णित करुण किसान-कहानी है ॥ ४१ ॥

"जन-जीवन से दूर आज, हम सब छात्रो का जीवन है।
काव्य-कल्पना-कला-लोक में, रहता लीन सदा मन है।
हम-तुम निज अवकाश काल को, चलो बितावें गाँवों में।
देखें वह चल-चित्र मनोहर, सुख पावें कुटियाओं में ॥ ४२ ॥

"मेरा जन्मस्थान गाँव है, मैंने दुख भी देखा है।
चलो दिखायें कितना सीधा, दुखद-करुण जन-लेखा है।"
कोमल मन, उत्सुक, उत्साही, वह राजेन्द्र हुआ तैयार।
समझ निशा गत अधिक, उस समय स्वीकृत किया नींद का प्यार ॥४३॥

प्रयत्न

सर्ग २

हीरे की उज्ज्वल कणिकायें, जो अम्बरतल में बिखरी थीं।
अवशेष निशा में, क्षीण चन्द्र रश्मियाँ, मधुर जो निखरी थीं।
रजनी-बाला निज निधि सारी, क्रमशः समेटती जाती थी।
प्राची के कलित कपोलों पर, अरुण व्रीडा इठलाती थी ॥१॥

मारुत किसलय की सेज त्याग, कुछ मंद मंद गतिमान हुआ।
खग-कुल ने मधुर प्रभाती गा, बतलाया 'जगो विहान हुआ'।
चेतना-लहर दौड़ी जग में, कलियाँ धीरे से मुसुकाईं।
आशा-प्रकाश की नव किरणें, पत्ते-पत्ते पर लहराईं ॥२॥

आलसी, विलासी श्रान्त-जनों, की सुख-विभावरी बीत चली।
कर्मठ नवयुवकों श्रमिकों की, खुल गई दिवस की रणस्थली।
राजेन्द्र कुँवर के अन्तर में, दब कर उमंग जो सोई थी।
जन-सेवा सपनों के जल से, उनकी सुख-सेज भिगोई थी ॥३॥

प्रयत्न

अब तम था अन्तर्धान हुआ, गतिमय जीवन का यान हुआ।
जग पर तो कंचन बिखर गया, नव बल उत्साह-विधान हुआ।
कैसा वह समय सुनहला था, धीरे धीरे बह रहा पवन।
गरमी सचारित होती थी, प्रमुदित था पृथ्वी का उपवन ॥४॥

इन स्वर्ण-प्रभा-रंजित क्षण मे, दोनो सानन्द चले पथ पर।
पुरुषार्थ योग की लिये लहर, अपने प्रफुल्ल जीवन-रथ पर।
चलते चलते कुछ दूर नगर के बिखरे बंगले छूट चले।
पश्चिमी छोर यह पार हुआ, सम्बन्ध शहर के टूट चले ॥५॥

अब तो दोनो ही ओर दूर तक खाली खेत दिखाते थे।
पर कहीं कही अरहर कपास के मरुद्यान लहराते थे।
हल, बैल बीज लेकर किसान, खेतो पर आते जाते थे।
धरती माता की गोदी को, यो पूरी भरी बनाते थे ॥६॥

चलते चलते छै सात मील राजेन्द्र बहुत ही श्रांत हुए।
पाँवों में झलके झलक पडे मुख सूखा, तन-मन क्लांत हुए।
था पथ पर कूप समाकुल सा, यात्री करते विश्राम जहाँ।
यह स्थान रुचा उन दोनो को, ठहरे करने आराम वहाँ ॥७॥

सूर्य कब का ओस पर, औ' शीत पर जय पा चुका था।
गगन में उच्चाश पर निज केतु, वह फहरा चुका था।
शरद मे भी उष्णता अब, विश्वव्यापी हो रही थी।
वृक्ष से छन वायु शीतल, क्लान्ति उनकी खो रही थी ॥८॥

बंदी-युग

बाल रवि ने जगत पर जो हेम-राशि बिखेर दी थी।
उष्ण उज्ज्वल तरुणिमा ने, वह सुछवि अब छीन ली थी।
तरु-रहित पथ-भाग से अब, गगन निर्मल दीखता था।
क्षितिज उज्ज्वलता लिये था, केन्द्र तो अति नील ही था ॥६॥

ज्ञान-तन के चार लोचन, खोलकर ये वीर साथी।
देखते थे देश अपना, आज नव उत्फुल्लता थी।
आज पल-पल के अनतर, चाव उनका बढ रहा था।
भूल पथ श्रम, मन कुँवर का, पाठ नूतन पढ रहा था ॥१०॥

ग्राम्य-जीवन-बिन्दुकरण, सुविराट बनते जा रहे थे।
सरल लघुता मे बहुत से, रग वे दिखला रहे थे।
सामने दीखा निकट ही एक चौराहा मनोहर।
कूप शाही, धर्मशाला, दो दुकाने, बाग सुन्दर ॥११॥

साहु जी ने मान से इन आगतों को ला बिठाया।
किन्तु इनको कुछ समय तक ध्यान भी अपना न आया।
कुछ समय पर चैन पाकर, सडक पर मजदूर देखे।
दुरमुशों पर झूमने के, दृश्य या श्रम क्रूर देखे ॥१२॥

झुण्ड था पचीस जन का, युवा बालक वृद्ध लेकर।
'कार' मार्ग प्रशस्त करते, श्रमिक तन मन-प्राण देकर।
हो गया था समय फिर भी, कार्य तो अवशेष सारा।
आगमन इञ्जीनियर का, मेट पर था भार सारा ॥१३॥

प्रयत्न

सदय ठीकेदार ने चेतावनी यह थी भिजाई।
'काम यदि होवे न पूरा दी न जावे एक पाई।'
अतः भय-वश समय के उपरात भी श्रम हो रहा था।
अनगिनत श्रम-सीकरों से, गात झरना हो रहा था ॥१४॥

तन शिथिल, मन शिथिल उनका बुझ रही थी भूख-ज्वाला।
यत्र-सा पर चल रहा था, श्रमिक-दल दुर्भाग्य वाला।
चुन रहे बालक विचारे, तोडते थे युवक पत्थर।
डालते कुछ एक पानी, कूटते थे पथ निरन्तर ॥१५॥

ध्यान से कुछ वेदना से, मित्र-द्वय यह देखते थे।
धैर्य रखकर युवक कोमल, चित्र दारुण लेखते थे।
अन्त में छुट्टी मिली अब, एक बजने जा रहा था।
सूर्य भी विश्राम कर, पश्चिम दिशा अपना रहा था ॥१६॥

गुड नमक या ले खटाई, तुरत ही रोटी उडाई।
सत्तु पर ही तृप्त होकर, रह गये कुछ दीन भाई।
कठिन दस घटे किया श्रम, तब मिले दस पॉच टुकडे।
चार बच्चे, बाप-मॉ, बीबी भला क्या आस पकडे ॥१७॥

वसन-भोजन कौन सा हो, कौन सी व्याख्यान-माला ?
देखता है मूक होकर विश्व यह, मेहनत-कसाला !
जब उठे तब लग चुका था, श्रमिक दल निज साधना मे।
पेट की, परिवार की, या विश्व की आराधना में ॥१८॥

\+ \+ \+

अब सुदामा ने सखा की क्लांति का।
ध्यान कर इक्का लिया विश्रांति को।
किन्तु वह तो था विचित्र बनारसी।
'हाथ कगन के लिये क्या आरसी'' ॥१६॥

किन्तु शुक्का का न इसमे दोष था।
वह अकेला प्राप्य था. सतोष था।
ध्यान से उसका स्वरूप निहारिये।
लाख मोटरकार उस पर वारिये ॥२०॥

सीट थी टूटी, फटी सडती हुई।
टाट की गद्दी फटी उडती हुई।
छत्र के डण्डे उखडते जा रहे।
बैठने को स्थान अधिक बना रहे ॥२१॥

हाल का लोहा बहुत था घिस गया।
साज रस्सी-चाम का सडता गया।
वृद्ध-तन-सा अस्थि-पजर लस्त था।
दीन इक्केवान अस्त व्यस्त था ॥२२॥

आज उसका भाग्य था पर खिल गया।
तीन दिन पर आज आश्रय मिल गया।
अतः राहत को बहुत सन्तोष था।
नियति के प्रति दूर उसका रोष था ॥२३॥

दीनता-अहसान आदर प्रेम से।
यात्रियो को ला बिठाया क्षेम से।
तब बड़ी पुचकार साहस-यत्न से।
चल पड़ा इक्का अनेक प्रयत्न से ॥२४॥

किन्तु घोड़े में न दम का लेश था।
मार से आता विवश-आवेश था॥
एक दो फलाग चलकर, लस्त हो।
काढ जिह्वा अड गया वह, त्रस्त हो ॥२५॥

इस समय राहत बहुत क्रोधित हुआ।
क्षुब्ध मुख मण्डल, अधिक लोहित हुआ।
अश्व पर कोड़े सड़ासड़ पड़ रहे।
और दोनों निज नियति से लड़ रहे ॥२६॥

सदय यात्री मूक, करुणापूर्ण थे।
उच्च भाव-विचार होते चूर्ण थे।
"बस करो, मारो न," वाक्य निकल पड़ा।
किन्तु इक्का भी इसी क्षण चल पड़ा ॥२७॥

दम मिला, कुछ चैन राहत को मिला।
झुलसता था बदन उसका अब खिला।
मौन फिर भी दूर तक कुछ वह रहा।
अंत मे संकोचमय स्वर में कहा—२८॥

"एक है सरकार यह मेरी विनय।
विवश कहता हूँ, अतः सुनिये सदय।
पेशगी पैसा हमें कुछ दीजिये।
प्राण बच्चों का बचा ही लीजिये॥२६॥

"सामने बाजार में दूकान पर।
राह मेरी देखता होगा उमर।
तीन दिन से हाथ खाली ही गया।
मै न लौटा घर उमर खाली गया॥३०॥

"बहिन बेवा और बच्चे तीन है।
क्षीण बीबी, रोग-दुख मे लीन है।
भूमि सब नीलाम 'रिन' मे हो गई।
वह विरासत एक छिन में खो गई॥३१॥

"कुछ दिनों कपड़े बुना की नौकरी।
कुछ दिनों दूकान छोटी सी धरी।
पर कभी सुख से न यह गड्ढा भरा।
क्या करूँ? जाऊँ कहाँ? रोता फिरा॥३२॥

"अन्त में चाँदी-गिलट-गहने सभी।
बेंच कर कुछ रुपये लेकर अभी।
छे महीने से लिया इक्का यही।
आज भी निर्वाह पर होता नहीं॥"३३॥

प्रयत्न

बात राहत ने यही रुक रुक कही।
आँख से धारा विवश जल की बही।
देख दोनों दृश्य यह व्याकुल हुए।
दुख दया से द्रवित अति आकुल हुए ॥२४॥

आ गया बाजार इतनी देर में।
राह की दूरी कटी दुख-टेर में।
भावमय राजेन्द्र ने रुपये दिये—
दो, जरा सकोच से शिर नत किये ॥२५॥

दब दया के भार से, उपकार से,
लिया उसने लोचनो की धार से।
शुष्क-आँखे प्रभा-जल से भर गईं।
नद-निराशा का मगर वे तर गईं ॥२६॥

उतर इक्के से, उमर को देखकर।
दे दिया वह रुपया अवरेख कर।
शीघ्र कर सकेत घर के काम का।
चल पडा निश्चित वह आराम का ॥२७॥

अब प्रकृति में वह नहीं उल्लास था।
शात सा इस समय जीवन-हास था॥
ताप ता कब का विदा था हो चुका।
अंशतः आलोक भी था खो चुका ॥२८॥

दीर्घतम छाया धरा पर हो चली।
थी निशा निज श्याम साज सँजो चली।
अब सड़क का छोर भी था आ गया।
अश्व दुर्बल धैर्य निज दिखला गया ॥३९॥

काम करके, दाम राहत ले गया।
तरुण-उर पर छाप अपनी दे गया।
मील भर ही दूर दोनई ग्राम था।
आध घंटे का सरल सा काम था ॥४०॥

रँभती गायें, थके-भूखे श्रमिक।
धन जुटाने मे व्यथित, गर्वित धनिक।
स्कूल से आते हुये, बालक चपल।
साथ पहुँचे मित्र ये दोनों सरल ॥४१॥

घर पहुँच कर, प्रेममय स्वागत मिला।
कुँवर सा सम्मान्य अभ्यागत मिला।
दूर शिष्टाचार का पर दंभ था।
बह रहा सर्वत्र ही स्नेहाम्भ था ॥४२॥

राजेन्द्र-जीवन-काव्य का।
यह प्रथम सुंदर पृष्ठ था।
यह दिव्य कंचन आज इस।
जन-धूलि में आदृष्ट था ॥४३॥

परिचय

सर्ग ३

यहाँ कुँवर ने ग्राम्य बालकों का जग देखा।
उनके उर पर खिची नये जीवन की रेखा।
धूल-धूसरित उछल-कूद में मग्न मनोहर।
लोट-पोट गिर दिखा रहे थे नाटक सुंदर ॥१॥

क्षण में कोई वदन, हास से खिल जाता था।
किन्तु उसी क्षण, अन्य क्रोध से हिल जाता था।
नन्हा घूँसा तान, अपर निज बल दिखलाता।
कोई बालक अचल खेल में गिर चिल्लाता ॥२॥

माता सुनकर रुदन काज तज दौडी आती।
'मत रो बेटा! तू राजा है" कह बहलाती।
लख माता को, और जोर से बेटा रोता।
पाकर स्नेहाधार अश्रु से अचल धोता ॥३॥

इस समूह से दूर एक कोने में जाकर।
चपल 'मजरी' और 'कमल' कुछ खेल बनाकर।
विजय और उल्लास-हास मे भूल रहे थे।
मुकुल अलौकिक बाल-स्नेह में फूल रहे थे ॥४॥

मचा हुआ था बाल-विहगो का मृदु कलरव।
यह नैसर्गिक दृश्य नहीं नगरों मे सम्भव।
इनके किन्तु अभाव हृदय में खटक रहे थे।
प्रति क्षण कुँवर नवीन भाव से अटक रहे थे ॥५॥

इनके तन पर वस्त्र नही कुछ दिखलाते थे।
कुछ अति दुर्बल-मलिन खेल से घबराते थे।
कोई इनकी देख नहीं करने वाला था।
इनकी पीड़ा-व्यथा नहीं हरने वाला था ॥६॥

स्वस्थ सुरुचिमय जिज्ञासा का भास नहीं था।
चपल स्फूर्ति का मोहक, तरल विकास नही था।
गोरे शिशु सा मुख पर विकच गुलाब नहीं था।
थी प्राकृत छवि, किन्तु विभव का आब नही था ॥७॥

दूध-दही की सरस्वती अदृश्य हुई थी।
माखन-चोर गोपाल-याद तक भूल गई थी।
इनका पोषण कौन और क्या करता, कैसे ?
जब दरिद्र था देश, और थे पास न पैसे ॥८॥

दूध-वारि, पौष्टिक-पदार्थ की स्वाद न पाते।
सूखी पैतृक-भूमि बीच पडकर मुरझाते।
काट छाँट तृण हटा बढाने वाला माली—
था न, किन्तु फिर भी जीवित पौदे बलशाली ॥६॥

शीशे में रख, यहाँ नही बच्चे पलते थे।
यहाँ न शिशु-समुदाय, साथ रहते चलते थे।
बाल-मनोविज्ञान-सूक्ष्म अनुशीलन द्वारा।
राज्य न देता शिक्षा या व्यवसाय-सहारा ॥१०॥

मातायें अज्ञान-मूर्तियाँ, भोली-भाली।
भूत प्रेत-भय और सिखाती केवल गाली।
कैसे तब ये सुमन निजी सौरभ फैलाते।
हो प्रफुल्ल बल शील दीर्घतर जीवन पाते ॥११॥

राष्ट्र बाटिका कौन लहलही बन्धु! बनाता।
इनका सीमित जब दरिद्र क्यारी से नाता।
शासन का बस काम यहाँ था शोषण करना।
शिशुओं के भी नवल रक्त से निज निधि भरना ॥१२॥

× × ×

पूर्व रात्रि को, शुक्लाजी दोनई आये थे।
सखा-उपस्थिति से न ग्राम में जा पाये थे।
पर प्रभात के साथ मिला जनता को परिचय।
"एक मित्र के साथ शुक्ल आये" यह निश्चय ॥१३॥

दबी किसानो के मन में कितनी आशायें।
रोग और अभियोग-शोक की करुणा-व्यथायें।
कितने गुप्त अभाव भाव-उर में अकुलाते।
शुक्ला से ही समाधान वे सबका पाते।

अलगू, नरू, निहोर शुक्ल के द्वारे आये।
इन्हें देख वे रक स्वर्ग की निधियाँ पाये।
सरल शुक्ल ने उन्हे हर्ष से ला बैठाया।
इनके प्रति निज सहज प्रेम उत्साह दिखाया ॥१५॥

गद्गद् हो आभार-स्नेह वात्सल्य भाव से।
पूछा शुक्ला-कुशल उन्होंने परम चाव से।
देख दृश्य, राजेन्द्र कुँवर विस्मय-रस साने।
जन सेवा-उल्लास-रग डूबे मनमाने ॥१६॥

कुछ परिवारिक कुशल-प्रश्न-सम्वाद अनन्तर।
अलगू ने निज व्यथा-कथा छेडी अति दुखकर।
"बाबू अपनी गरज अरज तुमसे करनी है।
सुना दर्द-दुःख दिल की सकल तपन हरनी है ॥१७॥

इधर गये छे मास नही तुम जब से आये।
इसी बीच हम पर विपदा के बादल छाये।
हुआ अँधेरा औ' अभाग्य की बिजली टूटी।
जो कुछ धन-सम्पत्ति रही प्रभुओं ने लूटी ॥१८॥

होगा शायद ज्ञात तीस जो कर्ज लिया था।
सागरमल से ले बेटे का व्याह किया था।
उसका क्रमशः सूद रहा देता मैं भाई।
तीन वर्ष के बाद नई यह आफत आई ॥१६॥

घर का 'बटुरा' काम रहा करता बेचारा।
पर कारिन्दे ने आ बीपत को ललकारा।
"छोड चलो सब काम साहुजी की बेगारी।
नहीं जायगी, तेरी बेटी बहन निसारी" ॥२०॥

इस पर कर आपत्ति उठा बेटा बेचारा।
अतः गया 'मगरूर' बहुत ही पीटा मारा।
कारिन्दे ने जाकर लाखों किये बहाने।
गाये उनके विभव-मान-अभिमान तराने ॥२१॥

"मालिक, अलगू ने हुजूर से मदद लिया था।
लाख खुशामद कर बीपत का व्याह किया था।
आज बीस दिन हुए, विपत का गौना आया।
वह घमण्ड में चूर फिरा करता इतराया ॥२२॥

"लल्ली की ससुराल भेजने उसे बुलाया।
डरा न बिलकुल मुझे मारने दौड़ा आया।
यदि न आपने दो दिन में उसका मद झाडा।
तो जायेगा सारा अपना मान बिगाडा ॥२३॥

"इसी तैश में तीस तीन सौ गया बनाया।
सागरमल ने तुरत वही दावा करवाया।
इतना काफी नहीं किन्तु था अभिमानी को।
दिया रुपया पुलिस दरोगा इहसानी को ॥२४॥

"बीपत को भी घर पर से ही पकड़ मँगाया।
थमा हाथ में दरी पुलिस ने जुर्म लगाया।
पीट पीट कर हवालात में बन्द कराया।
निज विभाग का कुटिल क्रूरतर न्याय दिखाया ॥२५॥

"धन-मिलने पर मुक्ति-मार्ग संकेत कराया।
अभी अनेकों दोष लगाने को धमकाया।
उनके सम्मुख भला कहाँ से धन धरता मैं।
अगम-सिंधु सा पुलिस-उदर कैसे भरता मैं ?२६॥

"इसी लिए वह आज जिला कारा में बंदी।
वृद्ध अकेला मै, दुख की धारा में बंदी।
कर्ज सूद, अभियोग शीश पर आ धमके है।
सभी प्रलय के अस्त्र शीश पर आ चमके है ॥२७॥

"हाथ जोड, धर शीश पैर में, बहुत मनाया।
किन्तु साहु को मानवता का ध्यान न आया।
बहुत परिश्रम बाद, पंच-परमेश्वर आये।
पर पूजा-भय-लोभ-विवश कर न्याय न पाये ॥२८॥

"किसको साहस भला विभव का बने विरोधी ?
कौन डटे, रण-मध्य खड़े जब लाला क्रोधी ?
सर्वनाश करने की ही थी मन में ठानी।
जमींदार ने भी मिलकर कर दी दीवानी ॥२६॥

"चार महीने में पचीस पेशियाँ पड़ी है।
रही हमारी मौत अदालत बीच खड़ी है।
बीपत की भी दस बारह तारीखें आई।
किन्तु आज तक हुई नही कोई सुनवाई ॥३०॥

'गल्ले से खाने को भी पर्याप्त न होता।
पेशकार मुन्शी वकील को क्या मै देता ?
नई बहू के तीन अदद बेचे वे गहने।
चल न सका जब काम, धरे कुछ बरतन 'गहने'[*] ॥३१॥

जाता हूँ हर बार मुक्ति की नव आशा ले।
आता खाली हाथ मौत की अभिलाषा ले।
दूध जुटा कर बूँद बूँद जो घी बनता है।
तरसें बच्चे, पर वकील का रँग छनता है ॥३२॥

"अब हम कैसे जियें कहाँ से रच्छा पायें ?
किस आशा के झूठ साँच में मन बहलायें ?"
सुन यह करुण-कथा कुँवर साहब अकुलाये।
छात्र-युगल के नयन वेदना से भर आये ॥३३॥

---

[*]बन्धक

करके कुछ दिल कडा, ज्ञान का लाभ उठाकर।
उसको दिया प्रबोध बहुत कुछ बात बनाकर।
हलका दिल का भार किये वे चले गये घर।
सुनी कुँवर ने व्यथा नये दुख-भावों में भर ॥२४॥

यह दिन कितना सघन भार लेकर आया था।
कुँवर वीर ने नव-चिंतन का स्वर पाया था।
हृदय-गगन में उदित विचारो के नव तारे।
निर्निमेष गिन रहे निशा में कुँवर बिचारे ॥२५॥

"मै भी अब तक सुख-सपनों में भूल रहा था।
सभा वक्तृता के त्यागों पर फूल रहा था।
मेरी प्रजा निराश निरक्षर दिखलाती थी।
स्वामि-भक्ति की सरिता उनमें लहराती थी ॥२६॥

"नहीं करुण यह दृश्य आज तक अवलोका था।
मानवता का दमन न यह भीषण देखा था।
क्या बीपत मधु-निशा मनाता है कारा मे?
क्या अलगू बह रहा अनय-मद की धारा मे?२७॥

"सागरमल का गर्व उपज क्या उनके मन की?
यह सारा उत्पात उपज या केवल धन की?
क्या पुलीस का इसीलिये निर्माण हुआ था?
शासक-शिवि से जन-कपोत का त्राण हुआ था?२८॥

"पचायत का आज सत्य गन्तव्य भला क्या ?
जिसे न कुछ अधिकार उसे कर्तव्य भला क्या ?
यदि पचायत-कीर्ति उन्हें कुछ रखनी होती ?
क्यों इस अनुपम-न्याय-प्रथा की रचना होती ?३६॥

कहीं जगत में सत्य भला क्या यों बिकता है ?
कोई देश-समाज न यों क्षणभर टिकता है ।
बलि-विक्रम या साम्य न्याय की याद न आओ ।
उर श्मशान मे क्षोभ-ताप मत और बढाओ ॥४०॥

प्रवेश

सर्ग ४

आज थी कार्तिक-अमा, छवि शारदी लहरा रही।
मलिन श्रीहत गाँव मे भी, नव प्रभा झलका रही।
वह असंयत तरल पावस, था बिदा अब ले गया।
शरद ऋतु युवराज को, पर आर्द्रता-निधि दे गया॥ १॥

शुक्ल अब राजेन्द्र को ले, ग्राम पुर दिखला रहे।
ग्राम-वस्ती पार कर, थे वाटिका को जा रहे।
एक अति सुन्दर सरोवर, था जहाँ लहरा रहा।
आरसी से विमल उर मे, तरु-सुमन दुलरा रहा॥ २॥

कुमुद, शीतल पवन-चुम्बित, दिवस में भी हँस रहा।
अरुण नीरज बिखरता अब मधुर सौरभ-यश रहा।
मधुप कंपित कमल-कलिका, छेड कर कुछ गा रहा।
झूम कर गुन-गुन स्वरो में, प्रेम-गीत सुना रहा॥ ३॥

भूमि की श्री श्वेतपुष्पा, हरितवसना हो रही।
छवि-तृषित उन्मद नयन की, प्यास सारी खो रही।
थीं अलङ्कृत कर रहीं, वह गात वीर बधूटियाँ।
छिप रहीं उस सुछवि मे, कितनी सजीवन बूटियाँ॥ ४॥

आम के उद्यान मे, छाया मनोहर छा रही।
रास-लीन कपोत दपति, कोकिला थी गा रही।
पक्षियो के कण्ठ से, धारा सुधा की जो बही।
वायु उस माधुर्य को, सर्वत्र थी फैला रही॥ ५॥

ग्राम-जनता को न इस, अनुभूति का अवकाश था।
उस सरल कर्मण्य जीवन में, क्रिया का लास था।
कृषक भी थे कर रहे, त्योहार की तैयारियाँ।
आज निर्जन सी पड़ी थीं, खेत की वे क्यारियाँ॥ ६॥

घूमते ही घूमते, पहुँचे निकट के ग्राम में।
लीन इक देखा युवक-दल, द्यूत के उपराम मे।
भ्रान्त आशा से उछलते, दाँव खूब लगा रहे।
और कौशल-कलित धन पर भाग्य निज अजमा रहे॥ ७॥

ग्राम-पति उपकार वश करते रहे यह योजना।
ग्राम्य जन दो दिवस को ही देख ले यह सुख घना।'
कर दिया ढीला पुलिस ने वज्र शासन-यन्त्र को।
जगा ले जिससे युवक जन द्यूत-चोरी मन्त्र को॥ ८॥

'आज जो जीता सदा ही सफल उसका काम था'।
यज्ञ नव यह इसी अंधी रूढि का परिणाम था।
इस युवक दल को नही कर्तव्य का कुछ ज्ञान था।
हॉ, इसे निज मत्त-यौवन पर प्रबल अभिमान था ॥ ६ ॥

थे यहॉ पशु क्षीण दुर्बल, सत्य वैभव-ह्रास था।
उन गृहो मे आन्तरिक सुख का न दीप्त प्रकाश था।
यदपि अब भी छल-कपट का नगर सा न विलास था।
किन्तु वर्णित दिव्यता का यह करुण उपहास था* ॥ १० ॥

सामने गोधूलि का हेमाभ सुन्दर काल था।
आज दीपाभरण-सज्जित दिग्वधू का भाल था।
इस समय प्रत्येक गृह मे नवल हर्षोल्लास था।
किसी विस्मृत भूत की स्मृति का पवित्र प्रयास था। ११ ॥

लघु हथेली पर लगन से दीप-थार सॅवारती।
ले चली वर नारियॉ कल-गीत मृदु उच्चारती।
किन्तु उनके पास दीपाधार स्वर्णिल थे नहीं।
दीप कलना योग्य रत्नागार उज्वल थे नहीं ॥ १२ ॥

खेत-कोषागार में अंकुर सुनहले आ रहे।
हरित मणिमय दृश्य लोचन, मधुप-मुग्ध बना रहे।
रूठ कर लक्ष्मी यदपि परदेश मे थी जा चुकी।
मूर्ति-पूजक देश की, पर थी न भक्ति मिटा सकी ॥ १३ ॥

---

*अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है!—श्री मैथिलीशरण गुप्त

'प्रात में देंगे भगा दारिद्र्य इन्हृदण्ड से।'
क्या अपेक्षा है भगाये उसे क्रान्ति-प्रचण्ड से?
इन विचारों में रमे राजेन्द्र लौटे आ रहे।
हर्ष-क्षोभ विषाद के बहु भाव थे लहरा रहे॥ १४ ।

एक घर सहसा दिखा तमपूर्ण दुःखागार सा।
भॉय-भॉय-प्रतिध्वनित वह शोक का भण्डार सा।
दिन हुए बारह युवक-दीपक बुझा इस गेह का।
ले गया आलोक वह आनन्द-सुषमा-स्नेह का॥ १५॥

दूसरे दिन मिल गई उस गॉव से उनको खबर।
रात में दो जगह ली थी चोर के दल ने खबर।
पुलिस वाले भी वहीं पर शाम से तैनात थे।
इसलिये, निर्भीक चोरो के कलामय हाथ थे॥ १६॥

आज सध्या समय अनुनय मिला उस परिवार से।
हो रहा मृतप्राय था जो काल की तलवार से।
शुक्ल भी लें भाग उनके शोकमय चीत्कार में।
दें सहारा नाव को, जो डूबती मझधार में॥ १७॥

शुक्ल ले साग्रह कुँवर को, समय पर उस घर गये।
थे जुटे 'भाई' जहॉ तेरही मनाने के लिये॥
वेदना-अनुभूति-मय सज्जन वहॉ कुछ थे रहे।
किन्तु अधिक दरिद्र ब्राह्मण थे निमन्त्रण जो लहे॥ १८॥

था नहीं उत्साह गृहपति करें यह अन्तिम क्रिया।
लोक-भय-वश, हृदय पत्थर-सा उन्होंने था किया।
कुँवर ने देखा—यहाँ उस विशद विप्र-समूह को।
अंध रूढि विडंबनामय, मूर्खता के व्यूह को॥ १६॥

पूर्व इसके हो चुके थे श्राद्ध आदिक कर्म सब।
महाब्राह्मण जानता है इस क्रिया का मर्म सब।
लिया जिसने दान सारे छीन निर्मम क्रूर बन।
कर्मकाण्डी अस्त्र ले परलोक-ठीका-शूर बन॥ २०॥

पंक्ति-भोजन-प्रश्न पर यों वाद बढता ही चला।
अपर धर्माधर्म पर निर्लज्ज फाड़ रहे गला।
उस व्यथित परिवार के प्रति थी दया इनमे नहीं।
स्वार्थपर कीटाणुओं में मनुजता होती नहीं॥ २१॥

जब मिला अवकाश, गृहपति शुक्ल जी से आ मिले।
शोक के आघात से, उनके हृदय-जर्जर हिले।
खोल दिल अनुभूतिमय स्वर में करुण गाथा हुई।
शात इस अभिव्यक्ति से कुछ क्षुब्ध मर्म-व्यथा हुई॥ २२॥

कुँवर के मानस-पटल पर यह अमिट आघात था।
और उर मे नव विचारों का करुण-संघात था।
कर्म-हीन समाज-दर्शन आज क्यो है हो रहा?
आत्मगौरव त्याग अपना नाम आज डुबो रहा॥ २३॥

राष्ट्र की परतन्त्रता से लुट गई संस्कृति अमर।
दासता ने आत्मवल औ' ज्ञान वैभव लिया हर।
अव नहीं है कर्म उज्ज्वल, कर्मकाण्ड अतः सडा।
देश को अपमान का शतशः लहू पीना पड़ा ॥ २४ ॥

कुशल शासन-तत्र ने दी धार्मिकादि स्वतंत्रता।
रूढि-मोहाज्ञान पर रक्षण-मुहर की मन्त्रता।
कुछ नहीं राष्ट्रीय शिक्षा का नवायोजन हुआ।
अतः विकृत धर्म का कृतकृत्य संयोजन हुआ ॥ २५ ॥

× × ×

शरद-काल प्रभात मे कुछ शीत का लघु भार था।
दीखता सुकुमार कंधो में दुशालाहार था।
दीन-जन-तन मे अलौकिक स्नेह का संचार था।
कप-स्पन्दन रोम-पुलकन का प्रकट व्यवहार था ॥ २६ ॥

आ रही थी शीत ऋतु, चिन्ता अनेक लिये हुए।
वस्त्र भोजन-वास का संकट विराट किये हुए।
उस वडे परिवार में कोई रजाई थी नहीं।
नये वस्त्र खरीदने को पास पाई थीं नही ॥ २७ ॥

बालकों को एक पर 'फटहा-पुराना' चाहिये।
इसलिये 'आगा' महोदय से प्रबन्ध कराइये।
किन्तु इनका मन न केवल वस्त्र पर एकाग्र था।
अभी तो वस बीज-संग्रह-त्याग में ही व्यग्र था ॥ २८ ॥

× × ×

ग्राम-विद्यालय खुला था आज भी संयोग से।
मन हुआ देखे इसे भी स्नेह-रुचि के योग से।
दिन ढले ये मित्र दोनो चल पड़े उस स्थान को।
कोस दो में जो अकेला रख रहा सम्मान को॥ २९॥

एक कुटिया और दो छप्पर वहाँ छाये हुए।
नीम पीपल और जामुन आम लहराये हुए॥
आध बिस्वा मे वहाँ थी बाटिका भी लग रही।
वृत्त और त्रिकोण में कुछ हरित आभा जग रही॥ ३०॥

पर युवक उस्ताद 'सोयम' मिडिल उर्दू पास थे।
त्याग की वे मूर्त्ति, आशा के न व्यर्थ विकास थे।
देखते थे काम घर का, बालको को भी तथा।
द्विविध मन वह नौकरी की खोज में भी लीन था॥ ३१॥

गाँव मे सर्वज्ञता का मान इनको प्राप्त था।
वैद्य-पंडित-ज्योतिषी कानून-गुण भी प्राप्त था।
श्रम उन्हें निष्काम प्रिय था ज्ञान के उपदेश में।
ऊँघने मे भी न था समकक्ष कोई देश में॥ ३२॥

था न कुछ पारिश्रमिक, कुछ अन्न मिल जाता रहा।
बालकों का स्नेह ही उपहार सुन्दर था अहा!
दो बरस के बाद सरकारी मिली इमदाद थी।
पाँच रुपये में वही निष्कामता बरबाद थी॥ ३३॥

छात्र-गण गन्द तथा थे अर्द्ध-नग्न दिखा रहे।
भूमि पर ही बैठ रज मे वर्ण-स्वर्ण बना रहे।
दूर पर कुछ बैठकर करते रहे शैतानियाँ।
हरख, मुंशी जी, हमें यह दे रहा है गालियाँ॥ ३४॥

ऊँघ से उठ मास्टर जी, डाट उठते थे उन्हें।
कुछ न भय उनको हुआ कंपित समझते थे जिन्हें।
जोर से कुछ पढ रहे थे पाठ अपने आप ही।
इस पठन का लाभ पाते सरल वे मा बाप ही॥ ३५॥

याद आया कुँवर को अपना सुनहला बाल्य अब।
कुशल शिक्षक के मनोहर स्नेह का आभार सब।
वे वसन भोजन-मधुर वे, चित्र या खिलवाड सब।
बाक्स किंडर गार्टेन से अध्ययन, उपहार सब॥ ३६॥

पर गरीब किसान तो शिक्षक न ऐसे पा सकें।
बोर्ड के मेम्बर महोदय तक न जब वे जा सकें।
तोडकर प्राचीन शिक्षा की प्रणाली शान से।
दे रही सरकार थी 'शिक्षा नवल' अभिमान से॥ ३७

प्रत्यावर्तन

सर्ग ५

शिशिर-काल की नीरव संध्या मारुत-व्यजन डुलाती।
पीतारुण प्रकाश की हल्की छाया लेकर आती।
जीवन की साकार दौड़ की गति का वेग बढाती।
नव उमंग-मय उष्ण रक्त भी, यह गर्विणी जमाती ॥ १ ॥

बैठ रहे थे अब नीड़ो में पंछी पंख फुलाये।
शीत और तम से मानो थे पत्ते भी सकुचाये।
विद्यालय-अवकाश-अनंतर युवक मित्र बडभागी।
सांध्य अटन के लिए चले ये प्रकृति रंग-अनुरागी ॥ २ ॥

करके बस्ती पार बढे कुछ दूर खेत-पथ धारे।
प्रकृति-वधू की रूप-राशि के सुन्दर दृश्य निहारे।
गेहूँ मटर चने या जौ के खेत हरे दिखलाते।
लक्ष्मी-श्री के महा-विभव के सरल रूप छवि पाते ॥ ३ ॥

जाती दृष्टि जहाँ तक चारो ओर एक सुखदाता—
हरित छटा का चचलतर सागर अनन्त लहराता।
उज्ज्वल लाल नील फूलो पर फूली मटर सुहाती।
हरित गगन में रग विरंगे तारों को चमकाती॥ ४॥

इन नयनो से देख रही निज रूप प्रकृति मद-माती।
अथवा सुन्दरता-समुद्र में बुद्बुद अमित उठाती।
सरसों के पीले फूलो के चटक रग मन भाये।
इस समस्त शोभा के ऊपर अपना रंग जमाये॥ ५॥

भीनी भीनी सुरभि आ रही थी इस शस्य-भवन से।
नेत्रो को प्रकाश मिलता था, इस शोभा-दर्शन से।
खजन चटुल चहचहाते थे, फुदक फुदक कर उडते।
दिवस विलासपूर्ण कर, निज आवासो को चल पडते॥ ६॥

सींच खेत या रखवाली कर, कृषक आ रहे घर पर।
इधर-उधर से लकडी चुनकर, ले कधे या सर पर।
स्वास्थ्य और सुख-मूल वायु का सेवन करते साथी।
'बडे दिनों' की सुखद-योजना की चलती चर्चा थी॥ ७॥

कहा कुँवर ने, "बन्धु आपने जो कुछ दृश्य दिखाया—
गत कार्तिक में—उससे मेरा सरल हृदय अकुलाया।
इतना कष्ट-अभाव मुझे तो लगता है अतिरंजन।
कभी कहीं क्या बन सकता है वह विकास का साधन?" ८॥

"भाई, कभी-कभी पापा से मैंने चर्चा की है।
और तुम्हारे सहज-गुणों की प्रायः अर्चा की है।
वे भी होंगे अति प्रसन्न पा तुम्हें प्रेम-गद्‌गद हो।
इसीलिए प्रस्ताव हमारा चलने का स्वीकृत हो॥" ६॥

"तो कल होगी यात्रा' निर्णय मे न लगी कुछ देरी।
सूर्य अस्त हो रहा छा रही थी अब श्याम अँधेरी।
लौट पडे इस साध्य-अटन से अब वे दोनो साथी।
पश्चिम से उठ चुकी लालिमा की अवशेष प्रभा थी॥ १०॥

उठा सुदामा इस प्रभात मे नव यात्रा आशा ले।
कलित कल्पनाओं के दर्शन की सुख-अभिलाषा ले।
शिशिर-शीत से कंपित-सा रवि धीरे-धीरे आता।
ओस भरी धरती को सुर-धनुषी साडी पहनाता॥ ११॥

दोनो हो तैयार चले ताँगे से स्टेशन-पथ पर।
बहुभागो से भरा हृदय ले सावधान मन-तत्पर।
नही किया स्वीकार शुक्ल ने 'इंटर' मे भी जाना।
पडा कुँवर साहब को भी यो 'थर्ड क्लास' अपनाना॥ १२॥

आई ट्रेन ठसाठस ठूँसे अगणित नर से प्राणी।
उमड पडी थी सुख-सुविधा तज, जनता कार्य-दिवानी।
जल-प्लावन के पूर्व, प्रलय-भय से अधीर अकुलाये।
मनु की इस नवीन नौका में बेचारे चढ धाये॥ १३॥

"बन्द द्वार है, यहाँ न आओ, जगह कहाँ है खाली?
आगे जाओ, चढ़ो न सिर पर कितने डब्बे खाली!
अंधे हो क्या? नहीं देखते, यही जगह क्या पा ली?"
पर अनुभवी कुली ने बाबूजी को जगह बना ली॥ १४॥

जन-सेवा-दायित्व लिये झूमती ट्रेन वह भागी।
मिला उन्हें अब समय साँस का बैठ चले बड़भागी।
मूँगफली केले का छिल्का गुड़-चावल का भूना।
बिखर रहा गन्दगी और दुर्गन्ध बढ़ाता दूना॥ १५॥

बच्चों के मलमूत्र पड़े थे उस पर यह हैरानी।
बैठ रही थीं स्त्रियाँ फर्श पर सिकुड़ी डर में सानी।
सीधे वृद्ध गरीब खड़े थे कुछ कोनों में जाकर।
लेटे पड़े बलूची अक्खड़ हाथ-पाँव फैलाकर॥ १६॥

हर स्टेशन पर बढ़ती जाती भीड़, शोर-गुल-माती।
यह मछुआ-बाजार निराला अनुभव उन्हें कराती।
कुछ लठैत जब घुस पड़ते थे दुगुनी अकड़ दिखाते।
तब ललकार, गालियाँ, धक्के देख कुँवर घबराते॥ १७॥

धोखेबाज बेचनेवाले घूसखोर वे अफसर।
पाकर मूर्ख दीन जनता को थे न चूकते अवसर।
शुक्ल-कुँवर ऐसे दृश्यों से थे अतीव घबराये।
देख मुजफ्फरपुर का जंक्शन सुखद सहारा पाये॥ १८॥

कार भेज दी, पूज्य पिता ने तार आज का पाकर।
बैठे सुख सन्तोष मान से शुक्ल कुँवरजी आकर।
कुछ मिनटों में पहुँच गये वे निज 'आनन्द-सदन' में।
शुक्ल प्रविष्ट हुए थे सहसा वैभव के आँगन में॥ १९॥

ऋद्धि-सिद्धियाँ लास-हास में यहाँ मग्न दिखलातीं।
रूप गर्विता कमला का थीं गर्वोल्लास बढ़ातीं।
सेवक यहाँ खड़े थे, कितने सुरतरु की डाली से।
मय दानव की मूर्त शक्ति ले, अति गौरवशाली-से॥ २०॥

कुशल सेवकों ने दोनों का सब वस्त्रादि सँभाला।
उपटन और तैल परिचर्या से पथ-श्रांति निकाला।
उष्ण वारि से नहला करके नव-परिधान कराया।
देकर शाल विशाल कक्ष में ले जाकर बैठाया॥ २१॥

स्नेह-सुधा-सी सुधा बहिन, अब आई ले दो थालें।
गरम मधुर पकवान-पेय के, विविध कटोरे प्याले।
आज प्रथम-दर्शन व्रीडा से सुधा बहिन सकुचाई।
सरल शुक्ल की आँखें भी कुछ झिपी, झुकी, घबराई॥ २२॥

पर राजेन्द्र कुँवर ने, उनकी अब पहचान कराई।
भाई और बहिन के नाते से वह झिझक मिटाई।
बोले हँसे प्रेम से तीनों अति आनन्द मनाया।
पहला दिन इस भाँति शुक्ल ने वहाँ सहर्ष बिताया॥ २३॥

शुक्ला ने 'आनन्द-सदन' के सभी कक्ष अवलोके।
भाँति-भाँति की रुचिर वस्तुओं से सज्जित गृह देखे।
बाहर बाघ-सिंह-हिरनों के टँगे शीश मन भाते।
रायबहादुर साहब का मृगया-कौशल दिखलाते॥ २४॥

श्वेतशिला की स्निग्ध मूर्त्तियाँ, जीवन से मुसुकाती।
सुन्दर आधारों पर रक्खा कला अमर दिखलाती।
कहीं चाँदनी-निशा, बाग, नौका-विहार तसवीरें।
समदूरी पर टँगी हुई, मणि-मुक्ता की जंजीरें॥ २५॥

भीतर कला-पूर्ण चित्रों से दीवारें रंजित थी।
कालीनी फर्शा उपकरणों से समृद्धि व्यंजित थी।
पुरुषाकार कई दर्पण उज्ज्वल आभा चमकाते।
देख परस्पर मुख विलास का धवल बिम्ब दिखलाते॥ २६॥

कल्पित या अतीत स्मृतियों की ये सुन्दर प्रतिमायें।
मृत पशुओ या जड निसर्ग की ये तन्मय पूजायें।
शुक्ल-हृदय में खेद और आश्चर्य भाव थी भरती।
जब मानवता दुख-अभाव से थी कराहती मरती॥ २७॥

सध्या को कुछ हुए इकट्ठे मुलजिम परम अभागे।
जिनका कुछ निर्णय होना था मजिस्ट्रेट के आगे।
अगणित तिथियो बाद आज वे अति उत्सुक हो आये
इष्टदेव-देवियाँ मनाते, भाग्य-वकील लिवाये॥ २८॥

"कल ईसा का जन्म-दिवस है उस करुणा-सागर का।
कील ठोक कर घातक के प्रति वीर क्षमा-आगर का।
जिनके आध्यात्मिक प्रकाश से जग में हुआ उजाला।
जिनके भक्त आज पीते है विश्वनाश की हाला॥ २६॥

जिला कलक्टर मिस्टर एडविन के घर कल उत्सव है।
पूँजीपति-भूपतियो की सद्भक्ति-परीक्षा अब है।
क्या सेवा-उपहार करेंगे, चिन्तित कुँवर-जनक है।
अभियुक्तों का आना इससे उनको खेद-जनक है॥ ३०॥

जिस रवि से प्रकाश पाते थे औ जिस तरु की छाया।
जिसके शासन की कृपाण पर स्वार्थ सकल ठहराया।
उसके भ्रू-संकेत मात्र पर सुख सुविधायें सारी।
न्याय-धर्म, इच्छाये अपनी उच्च वर्ग ने वारीं॥ ३१॥

न्याय हुआ कुछ नही, बिचारे लौट गये निज घर को।
मूल्यवान उपहार भेज पापा भी आये घर को।
विस्तृत बाह्य विभव के भीतर जो विषाद की छाया।
पराधीनता-जन्य, उसे लख तरुण-हृदय अकुलाया॥ ३२॥

अन्तर्दर्शन

सर्ग ६

सध्या समय पिताजी बैठे शुक्ल कुँवर को लेकर ।
भूल विरस चिन्ता जीवन की स्निग्ध आर्द्रता देकर ।
परिवारिक जीवन-परिचय कर की सप्रेम कुछ बातें ।
प्रोत्साहन-आश्वासन, शिक्षा और धर्म की बाते ॥ १ ॥

ताऊजी का मिला निमत्रण मित्र-सहित आने का ।
अपनी स्नेहाधार मूर्ति से उनको बहलाने का ।
तायीजी आनन्द-मग्न थी सुन बेटा आयेगा ।
कल उनके नन्हें शिशुओं का प्रिय भैया आयेगा ॥ २ ॥

वहाँ पहुँच कर अन्य प्रात में सखा युगल सुख पाये ।
विमल और प्रतिभा रानी को नये खिलौने लाये ।
दासी ले उनको गाडी मे वही कही बहलाती ।
घर के पास धूप मे लकर थी उनको टहलाती ॥ ३ ॥

कुछ देरी में 'भैया ! भैया !!' करते बच्चे आये ।
उनको उठा गोद में भैया, चूम वदन हर्षाये ।
परिचय पूछ शुक्ल का, की कुछ स्नेह-तोतली बातें ।
फिर दादा से अस्त-व्यस्त प्रश्नो की झडी लगाते ॥ ४ ॥

सुन्दर गर्म वेशभूषा में वे चंचल मृग-छौने ।
हुए बहुत खुश पाकर दादा से वे नये खिलौने ।
इनके अरुण कपोल गुलाबी, रक्त स्वस्थ लघु बाहें ।
बडे-बडे जिज्ञासु नेत्र उपजाते दर्शन-चाहें ॥ ५ ॥

कुछ कृतज्ञ रोगी फल-फूलों की डाली ले आते ।
फिर डाक्टर को भक्ति-निदर्शन मे उपहार चढाते ।
विषयी रुग्ण विभव-चिन्तित हो थे मोटर दौडाते ।
विनय-प्रलोभन दे ले जाते, आँसू दीन गिराते ॥ ६ ॥

आज द्रवित हो, एक दलित की औषधि चले कराने ।
त्योंही मिले सदर-डिप्टी के आवश्यक परवाने ।
हृदय-कमल सकुचाया सहसा पर थे विवश विचारे ।
चले गये वे डिप्टी के घर किन भावो के मारे ? ७ ॥

ताऊजी उस बड़ी जगह से एक बजे तक आये ।
मित्र-युगल ने अपने घंटे आज सहर्ष बिताये ।
किन्तु उपेक्षित वह रोगी था बैठा अब तक भाई ।
डाक्टर साहब कर न सके थे जिसकी विवश दवाई ॥ ८ ॥

अस्तु, उन्होंने यत्न-प्रेम से परिचर्या की उसकी।
अनुकम्पा-औषधि से सारी पीडा हर ली उसकी।
यों तो सदा दीन-दुखियों की ये थे सेवा करते।
पर समृद्ध की भला उपेक्षा आप कहाँ तक करते? ९॥

× × ×

रहा कार्य-क्रम आज चचाजी के शुभ दर्शन करना।
पारसमणि-सी इस संगति से ज्ञान-कोष निज भरना।
प्रिय उपेन्द्र-शीलेन्द्र स्नेह से मानस-दीप जलाना।
अध्यापक सुरेन्द्र संग गाना देश-प्रेम का गाना॥ १०॥

पहुँचे जब अध्ययन कक्ष में वे स्वाध्याय-निरत थे।
बृटिश राज्य के चिर-रहस्य के अन्वेषण में रत थे।
देख रहे वह दंभ-स्वार्थ जग विगत चित्र फैलाये।
आकर मिले अतिथि भ्रातृज से प्रेम-बाहु फैलाये॥ ११॥

परिचय-शिष्टाचार-अनंतर कुशल क्षेम की गाथा।
चाचा ने सक्षोभ बताया हेस्टिंग्ज वह क्या था।
चर्चा हुई विदेश देश की उठी अनेक समस्या।
हुई प्रशंसित नवयुवकों की स्वाधीनता-तपस्या॥ १२॥

चाचीजी से कभी कभी शुक्ला का जिक्र किया था।
उत्साही राजेन्द्र कुँवर ने परिचय पूर्ण दिया था।
अतः दया-वात्सल्यमयी माता न जरा सकुचाईं।
अपने ही कुँवरों-सम दोनों को घर में ले आईं॥ १३॥

अनुशासित स्वाध्याय-लीन दोनों कुमार अब धाये ।
चन्द्र-किरण से मधुर हास के स्वागत-पाट बिछाये ।
मिनी किन्हीं अज्ञात-भावनाओं में उलझ रही थी ।
चंचल-नेत्र करो अधरो में, शिशुता झलक रही थी ॥ १४

आ समीप रञ्जन दादा ने, सहसा उसे पुकारा ।
दौड़ पड़ी बेसुध कलनादिनि वह सनेह की धारा ।
हुआ वहाँ जो खिल-खिल मंगल प्रेमानन्द निराला ।
प्राप्य कल्पना-अमरपुरी में भी न सुखद यह हाला ॥ १५ ॥

चचा सुरेन्द्र-संग फिर वे सब मिलन-कक्ष में आये ।
सेट नव स्प्रिंगदार सोफों के, चित्र अनेक सुहाये ।
नन्दलाल अवनींद्रनाथ कनु देसाई की कृतियाँ ।
लियोनार्ड रैफल आदिक की रचित मधुर आकृतियाँ ॥ १६ ॥

जीवन के विभिन्न समयों के कुछ फोटो खिचवाये ।
स्मृतिकर्षक अतीत के ये क्षण बन्दी होकर आये ।
मध्य भाग में पत्र-पुष्प के सुन्दर चयन सुहाये ।
बापू और कवीन्द्र जवाहर लेनिन भी छवि पाये ॥ १७ ॥

राजनीति, इतिहास और नव अर्थशास्त्र-रचनायें ।
चाची-द्वारा क्रमविभक्त वे अलमारिया सजायें ।
विभव नहीं अति, किन्तु प्रेम-आदर्श-तुष्ट दिखलाते ।
निज छोटा उद्यान पार्क ग्रंथालय रुचिर सजाते ॥ १८ ॥

था उपेन्द्र कैप्टन बनने का स्वप्न देखता भारी।
प्रतिभाशील सुशील आइ० सी० एस० की करे तयारी
उनके ही अनुकूल आचरण-बातचीत की विधिया।
ट्यूटर कुशल ढालते चाचा-दम्पति की वे निधिया ॥ १६ ॥

राष्ट्र-जाति-अभिमान उन्हे था, उच्च भावना भारी।
किन्तु वर्ग-दर्शन तरगमाला पर किये सवारी।
दीन-दुखी जनता की करुणा दूर-दूर थे लखते।
पराधीनता देख देश की, मन में सदा विखलते ॥ २० ॥

ग्राम्य अर्थ-पद्धति पर लिखते भावपूर्ण रचनायें।
लेट-लेट आरामकुर्सियो में नव ज्ञान सिखाये।
सक्रिय राजनीति की आँधी से परन्तु घबराते।
उदर और सम्मान-समस्या कैसे तब सुलझाते? ॥२१॥

नहीं रूस या आयर जैसी बुद्धि-चेतना जागी।
इसीलिए यह जाति अभी तक सोई पडी अभागी।
बुद्धि-बाहु-बल से न राष्ट्र का सूत्र हाथ में धरते।
हाँ जीवन साहित्य और सगीत-कला से भरते ॥ २२ ॥

× × ×

चौथे दिन वे गये मित्र जयकात-गेह आमंत्रित।
जिनके पिता प्रमुख बैरिस्टर जिला-प्रान्त में वदित।
राजनीति सामाजिक उन्नति के आधार मनोहर।
धन-अर्जन धन-दान-त्याग में थे प्रसिद्ध गुण-आगर ॥ २३ ॥

महल विशाल वाटिका-भीतर नव स्थापत्य-नमूना।
इन्द्रपुरी का सुख-वैभव भी इससे लगता ऊना।
विद्यु-दीप से आलोकित था जगमग जगमग वह जग।
इसे देख नभ मे कंपित थे तारों के उज्ज्वल पग ॥ २४ ॥

बड़े-बडे थे जुटे मुअक्किल ले निज दुखद कहानी।
धन-सम्पत्ति-विभाजन-रक्षण में दुनिया दीवानी।
नोच-खसोट खींच-तानों में न्याय-कला लगवाना।
धन देकर निर्मल विवेक का गला यहां कटवाना ॥ २५ ॥

दीन-दुखी पर बल-अभिमानी का यह उत्तम पेशा।
कर अध्ययन विधान-न्याय का यही अमीरी पेशा।
कितना छल ! कितनी प्रवंचना ! कितना दंभ अनोखा।
श्वेतभार* की नव संस्कृति का इतना उज्ज्वल लेखा ॥ २६ ॥

दीनों की न वकालत करते, श्रमिक नहीं घटाते।
दीनबंधु है, किन्तु क्योंकि ये जन-प्रतिनिधि बन जाते।
उच्च पत्र इनके लेखो से सदा अलंकृत रहते।
शुक्ल-कुँवर निरुपाय क्षणों में इनका परिचय लहते ॥ २७ ॥

बैरिस्टर-योग्यता प्रमाणित अति ऊँचे जीवन से।
थी समाज में सतत-प्रतिष्ठा उनके विलसित धन से।
जो संगठन राष्ट्र-उन्नति के विकसित हुए शहर मे।
धुले प्रथम ही उनके भाषण-ज्ञानोत्साह-लहर में ॥ २८ ॥

---
* Whiteman's burden.

आर्थिक या नैतिक सहायता या प्रसाद ही पाकर।
बढ़ युवक त्यागी उत्साही राजनीति में आकर।
नहीं अभी अवकाश घुसें जो कृषकों के जीवन में।
वह पागलपन था न घँसे जो ज्वलित दीन-जनवन में ॥२६॥

वह निश्चय है किसी देश की क्रांति न इनसे होती।
दूनी आब दिखाते झलमल पर हैं नकली मोती।
इनमें नहीं आग वह धधकी जो दे तेज अनोखा।
हाँ इनके बाह्याडंबर से हो सकता है धोखा ॥३०॥

× × ×

बड़े दिनों का ईसाई त्योहार न एक दिखावा।
पश्चिम के नृशंस जीवन के सरस प्रेम का दावा।
उनका स्नेह-उमंग-मिलन है नहीं हास वह सूखा।
जिस पर श्रद्धा विस्मय करता देश हमारा भूखा ॥३१॥

राम-कृष्ण के लिए आज हम पूजा-पत्र चढ़ाते।
प्रेम-भक्ति से गद्‌गद् होकर आँसू चार बहाते।
ईसा के चरणों में अर्पित, विश्व-बैंक-धन सारा।
स्वर्ग-राज्य से धनी जनों को जिसने दूर निसारा ॥३२॥

होंगी लगी बड़े नगरों में उत्तम प्रादर्शिनियाँ।
क्या ईसा-पूजा करता है, देखें हिन्दी बनियाँ।
लगता यहाँ आजकल ऐसा ही व्यापारिक मेला।
दास राष्ट्र ने ग्रहायोग में देखें क्या दुःख झेला ॥३३॥

था इसका उद्देश्य दिखाना शिल्प-प्रसार नमूना ।
गाँवों की वे अमर कलायें आज बनीं जो हीना ।
जिनमें भारत की आत्मा की सात्विक रश्मि झलकती ।
त्याग-प्रेम-उपकार सौम्यता श्रम की प्रभा चमकती ॥३४॥

अब न प्रदर्शन को मिलते, पर वे रेशम के अम्बर ।
ढाका या मुर्शिदाबाद के वे विस्मयमय नम्बर ।
कहाँ अँगूठी, कहाँ थान वे जो उनमें खिच आते ।
देश-प्रेम की शपथ दिलाकर जब खादी बिकवाते ॥३५॥

देखी अलीगढ़ी शस्त्रों तालों की एक सजावट ।
चाकू कैंची या कृपाण की कृत्रिम रंग बनावट ।
देख न लेना यहाँ रिवाल्वर-बाम्ब रायफल-सपना ।
निज रक्षा-प्रयत्न वर्जित है दास देश है अपना ॥३६॥

कृषि-उपकरण-प्रचार चित्र से एक भाग था सज्जित ।
एक भाग कैबिनेट-फर्नीचर-रंगीनी से रंजित ।
एक जगह पर फौवारे से नन्हें बिन्दु उछलते ।
बिजली के प्रकाश से जिनमें इन्द्रधनुष थे पलते ॥३७॥

हस्तकला के कुछ प्रयत्न थे पर न राष्ट्र का बल था ।
ज्ञान और विज्ञान-विभव का प्राप्त नहीं सम्बल था ।
आज नहीं कुछ भी बाकी है जो कुछ भी था कल था ।
युगल मित्र का हृदय आज, यह दृश्य देख विह्वल था ॥३८॥

कुछ सभ्रान्त कुलों की आई थी नवीन ललनायें।
चचल अरुण कज-कलियों की वे सुरम्य कलनायें।
धानी और वसन्ती साडी नील रेशमी चोली।
कहीं जरा सा रुकना मुडना, कुछ मीठी सी बोली ॥३९॥

कितने युवक-भ्रमर आते थे इन पर ही मँड़राने।
आती थी ये चपल तितलियाँ उनका जी ललचाने।
यह अभिसार-स्थल मित्रों का, धनिकों की रगरलियाँ।
देख भूलते दीन शहर के जिनसे दूषित गलियाँ ॥४०॥

हाँ देखो तो टूट रहे वे आसमान में तारे।
हरे-लाल, छोटे-विशाल वे उड़ते गगन किनारे।
बन जातीं इन अग्नि-कणो की फौजें लडने वाली।
छर छर पड पड़ या तड़ तड़ कर ताल ठोंकने वाली ॥४१॥

खेल रहे जो यहाँ आग से आग देख वे भागें।
इनके सोये भाग्य किसी दिन कहो कि कैसे जागें ?
यह तो धन के व्यर्थ नाश का केवल एक बहाना।
आतिशबाजी की बाजी मं जनता-रक्त बहाना ॥४२॥

कविगण आकर झूम रहे हैं, पाकर शुष्क निमत्रण।
बाँध रहे साहित्य-स्थाणु में अपने उर का कपन।
नीरव हृत्त त्री में झकृत है, प्रमदा की माया।
देश-वासियों की तडपन का स्वर न कान तक आया ॥४३॥

परिवर्तन

सर्ग ७

लेकर काया-कल्प तरंगें पतझड़ दूर सिधारा।
मजुल नव जीवन-वसन्त मे बही सुरभि की धारा।
खिले रूप वे मादक मोहक कुसुम और किसलय में।
छात्रो ने ऋतु-गीत सुना पर केवल कवि की लय मे ॥१॥

हुई गुलाबी उषा कहाँ ? या सूर्य चमकता आया।
कब मध्याह्न-ताप मे कृषको ने भी पकड़ी छाया।
कब गोधूलि हुई या तारे नभ-मण्डल मे छाये।
बन्द-कक्ष विद्युत्प्रकाश में नहीं जान वे पाये ॥२॥

गई परीक्षा फिर छात्रों की स्वच्छदता सुहाई।
विगत मास की दबी कामना नव उमग ले आई।
चद्र और गगा की लहरें इस सुख पर मुसुकाई ।
पुनः प्रकृति ने नये रूप की संजीवनी दिखाई ॥ ॥३॥

गरमी के अवकाश काल में पुनः ग्राम-पथ धारे।
ग्राम्य जगत के अंग अंग के आकर रूप निहारे।
हुआ सहज वात्सल्य भाव से आज कुँवर का स्वागत।
उस कुटुम्ब का अङ्ग-मात्र था, वह न आज अभ्यागत ॥४॥

गये बाग मे जहा लगी थी खलियानों की ढेरी।
था वैशाख, कटी थीं फसलें, गॅजी राशि बहुतेरी।
चलती हवा पश्चिमी सन् सन्, पत्ते पेड हिलाती।
आँख झपाती, गात हिलाती, कोमल अधर सुखाती ॥५॥

कटे खेत बिलकुल खाली थे चारों ओर सुहाते।
खडे ईख के खेत कही थे शोभा अधिक बढाते।
अमिया हरी-हरी झोपों में झूम-झूम लहरातीं।
पल पल लहर लहर मे जैसे अपनी ओर बुलातीं ॥६॥

खलियानों मे बूढे-बच्चे युवक कार्यरत सारे।
यथास्थान आनन्द-मग्न थे पारस्परिक सहारे।
बैल अन्न को कुचल रहे थे, पर मुँह मे था खोता।
निज-उद्भूत अन्न का कण भी प्राप्त न इनको होता ॥७॥

अगहन में जो बागें सूनी उनमें कितनी शोभा।
चपला लक्ष्मी की गरिमा पर युवकों का मन लोभा।
साहु और ठाकुर के अनुचर अब तक रहे भुलाने।
पाकर समय काल-छाया से लगे यहाँ मडराने ॥८॥

परिवर्तन

गत सावन में अन्न कर्ज ले कुल का प्राण बचाया।
बढे दरिद्र उदर में जाकर होने लगा सवाया।
ढका नग्न तन शीत काल में लेकर बीस रुपैया।
भीषण भेष धार कर आया वही क्रूर अगवैया ॥६॥

हँसा, प्रसन्न हुआ क्षण भर को जो किसान बेचारा।
अन्न-राशि लख स्वाभिमान से था जिसने हुंकारा।
कितनी दबी उमंगों को था, दिल में आज उभारा।
सिद्ध हुआ पर बलि-पशु को यह, हरित प्रलोभन सारा ॥१०॥

आये दो लठैत कारिन्दे, बनिया-बाट लिवाये।
बही हाथ में, गाली मुँह में, भौहें खूब चढाये।
"अभी तौल दो, हुक्म साहु का, अब मत करो बहाना।
टाल-टूल से काम न होगा, आँसू व्यर्थ बहाना ॥"११॥

दिल मसोसकर, हाथ दबाकर, उर में जलन छिपाये।
दृग में पानी, अधर-विकलता से ऋण-ब्याज चुकाये।
किस दर पर वे दाम चुकाते, व्यर्थ सभी ये बातें।
जब हैं आज अन्न से पूरी-भरी सभी देहातें ॥१२॥

दया-न्याय-मानवता बंदी धनिको के बंधन में।
आधा अथवा मिले तिहाई मूल्य कृषक-जीवन में।
मलते हाथ, विषाद-वदन ये, रिक्त-हाथ घर आते।
हड्डी घिसने खून सुखाने का यह प्रतिफल पाते ॥१३॥

बदी-युग

अशन-वसन में जान नहीं थी, प्राण-सूत्र थी आशा।
प्राप्ति-झलक दिखला क्षण भर को बनी तमिस्र निराशा।
कैसे लम्बे मास कटेंगे, क्या खा बच्चे जीवे?
कैसे कर दें जमींदार का? क्या शिक्षामृत पीवें ?१४

नहीं सबल मस्तिष्क कि चिन्ता भार सहें जो इतना।
इसीलिये ताड़ी पीते है, भूले दुःख भी कितना?
वे ब्रांडी लेमनेड, बियर द्राक्षासव खूब उड़ाते।
इनके विवश मनोरजन को नशा नशा चिल्लाते ॥१५॥

जलाभाव मे जैसे मछली तडप तडप कर मरती।
इसी भाँति यह अनय-विवशता उनको पीडित करती।
हो उनमे उत्साह कहाँ जब कर का छिने निवाला?
उन्हें आलसी कहे अप्सरा-अधर चूमने वाला!१६॥

शासन ने आदेश दिया कर्जा अनिवार्य चुकाना।
रचा विधान कडे दण्डो का भरे न अगर खजाना।
हड्डी बेच, भूख सह करके बच्चे विक्रय करना।
शासन न्याय समक्ष, मनुज का न्याय दे रहा धरना ॥१७॥

एक दिवस फिर टहल रहे थे, अन्य ग्राम में जाकर।
देख, नरू सादर ले आया अपना शोक भुलाकर।
उन दोनों ने सुनी कथा जब उसकी हृदय-विदारक।
पुत्र-वियोग सुना, मुरझाये जनता-कष्ट-निवारक ॥१८॥

परिवर्तन

क्षीण स्वरों मे सवेदन-मय कुछ प्रबोध-आश्वासन।
शुक्ल दे रहे थे गरीब को कुछ करुणामय प्रवचन।
इतने मे देखा आते है एक प्रोढ अभिमानी।
मूँछ उठाये, सीना ताने, लिये अकड हैवानी ॥१६॥

सर में बँधा दुपट्टा, कर में लेकर लबी लाठी।
क्रोध और धमकी के स्वर में, बोले बदल त्रिपाठी।
"भेजा हमें कुँवर साहब ने, अभी लगान चुकाओ।
करो शीघ्रता, हमें नहीं तुम बार-बार दौड़ाओ॥"२०॥

"महाराज छे दिन पहले ही बेटा मरा हमारा।
शोक-भँवर मे पडा हुआ हूँ मै विपदा का मारा।"
बोले बिगड, "नही रोओ तुम दुनिया भर का रोना।
नहीं चाहते हो खेतों से अगर हाथ तुम धोना॥"२१॥

"बेटा मरा और चाहे जो मरे हमें क्या करना ?"
हमको तो तहसीलों मे है मालगुजारी भरना।
दे लगान क्या अपने घर से या हो तव-हित कैदी।
या लौटा दें बेटा तेरा ?"—वाक्य-बाण उर-भेदी ॥२२॥

शुक्ल नहीं सह सके, डाटकर उस नर-पशु से बोले।
धैर्य छोडकर कुछ शब्दो में उग्र तेज निज तोले।
"जायँ भाड में तेरे ठाकुर, तू नजरों से हट जा।
मै दे दूँगा रुपया तेरा, जा तू. जा, बस भग जा ॥२३॥

"नीच, अगर इस दुष्ट-प्रथा की हमने की न सफाई।
तेरी और अकड ठाकुर की हमने यदि न मिटाई।
तो उनको क्या मालुम होगा मानवता है जागी।
झुके और सूखे ढाँचों मे आग कौन सी लागी ?"२४॥

× × ×

तीन दिवस उपरात श्यामपति शुक्ला के घर आया।
अननुभूत प्रत्याशित सुख में पुलकित उमँगित धाया।
बाल-सखा प्रिय, दीन सरल था सँग में खेला खाया।
बुद्धि भाग्य निर्धनता ने था दोनो को अलगाया ॥२५॥

जब अवकाश मिला करता था प्रिय दोनों थे मिलते।
सुखद अतीत-सरस-स्मृतियों से सुमन हृदय के खिलते।
आज प्रेम-सम्मान-विनय-मय सन्देशा ले आया।
लज्जा और हर्ष-गद्‌गद् हो, व्याह निमन्त्रण लाया ॥२६॥

उसके पिता उसी संध्या को शुक्ल-मिलन को आये।
बैठ अलग, दिल खोल, प्रेम से सब वृत्तान्त सुनाये।
"जाति और रिश्तेदारों से बाध्य हो गया भाई।
लिया तिलक हमने बेबस हो भुला सकल कठिनाई ॥"२७॥

"यदपि नहीं कुछ पास आपके, किन्तु नाम है अच्छा।
देव और पूर्वज-परमेश्वर, करें प्रतिष्ठा-रच्छा।
"सागरमल से लिया पाँच सौ, बीघा आठ वताकर।
हाथ बटोर काम करना है, कोई युक्ति लगाकर ॥"२८॥

"कहते कुल के लोग, न अवसर बार-बार यह आता।
खर्च करो दिल खोल, नाम-यश है जिससे जग पाता।
बिना प्रचुर गहनो के होगा मण्डप नही उजाला।
जनवासा आवास करेगी केवल वेश्यावाला ॥२६॥

"मुझमें तो उत्साह-शक्ति का, नही परम पागलपन।
इज्जत सम्बन्धी कुटुम्ब का, पर है दृढतर बन्धन।
आप तथा कुछ और मित्र हैं, मेरे शुभ सहयोगी।
पार प्रभो की कृपा मात्र से मेरी नौका होगी॥"३०॥

दौडे वहुत पिता श्यामू के कुछ न सफलता पाई।
हाथी मिला न घोडे की ही पक्ति शिविर मे आई।
किन्तु पडोसी एक मित्र ने वेश्या ठीक कराई।
विवश रुपया चालिस देकर नृत्य-हेतु ठहराई॥३१॥

चिरसुहागिनी किसी व्यक्ति को पर न तुष्ट कर पाई।
देकर विवश तीस वेचारी, गई तुरत लौटाई।
कुँवर-शुक्ल के साथ एक गायनाचार्य था आया।
जिसने गान और भाषण से सबका मन बहलाया॥३२॥

लेन-देन, आचार और व्यवहारों के वादों मे।
कितना रस, कितना रहस्य था, उन गाली नादों में।
पर यह तो सामान्य रूप है, अपने व्यवहारो का।
मंगल कम न हुआ करता है, इनके उपचारों का॥३३॥

मङ्गल-उत्सव, जीवन-बन्धन, स्नेह मोह की हाला—
के चढाव का अन्त हुआ था, था उतार दुखवाला।
शिथिल श्राति थी, दूर भ्रान्ति थी, था जीवन-रस फीका।
भार-ताप अब बढा पिता के श्यामू के जीवन का ॥३४॥

नव-दम्पति आस्वाद न पायेंगे उन्मद यौवन का।
अधर-कपोल-मधुर-रस अथवा अमृत चन्द्र-आनन का।
ऋण-धन के ही चक्र व्यूह में, भ्रान्त समस्त जवानी।
दीन-युवक शृङ्गार प्रेम की यही दुखान्त कहानी ॥३५॥

दीन और ग्रामीण जनो के सूखे से जीवन मे।
यही तीन दिन की रस-धारा उनके जलते वन मे।
यह पवित्र संस्कार अगर वे हो उन्मत्त मनाते।
प्रणय मग्न सभ्रान्त जनों की तो क्या तुलना पाते ?३६॥

× × ×

एक दुपहरी मे मथुरा से आये पूजित पण्डा।
वही लिये वशावलियो की लिये धर्म का झण्डा।
उनका भी वार्षिक लहना था, श्राद्ध-दान का वादा।
भूल जायॅ तो यजमानों का धर्म नष्ट हो सादा ॥३७॥

उनकी इस उपकार-वृत्ति पर, हमें हॅसी कुछ आई।
ग्राम-पुजारी की भी देखो जनता-हेतु भलाई।
ग्राम शिवालय में ले जाते, प्रचुर अन्न घृत-बाती।
उनकी पूजा या प्रसाद से, ईति-भीति नहि आती ॥३८॥

देवालय अब राष्ट्रधर्म, शिक्षा के केन्द्र न होते।
गहन गुफाओं में पूजक भी समाधिस्थ कब होते?
रूप और यौवन सम्पन्ना शिष्याओं की माया।
मदिरा और मास म माते, पाते अचल-छाया ॥३६॥

धर्म-गुरु भारत की आत्मा, है परलोक सिधारी।
इस माया के मिथ्या जग मे क्या करती बेचारी?
भौतिकता अभिशाप पश्चिमी उपज दासता मन की।
अपना निश्चित स्थान स्वर्ग मे क्या चिन्ता इस तन की ॥४०॥

× × ×

था अपराह्न, किसानो की फिर चलने लगी कुदाली।
धूधू कर अङ्गार उगलता रवि प्रचण्ड बलशाली।
कॉप रहे आकाश दिशायें झलमल उस ज्वाला से।
पौदे झुलस रहे थे सारे उष्ण ताप-माला से ॥४१॥

धैर्य छोड धरती थी व्याकुल, ज्वाला में थी भुनती।
भय से बन्द प्रकृति की सॉसें, हवा नही थी चलती।
पंछी चोच खोल अकुलाते, रेवा शोर मचाता।
हॉफ रहे पशु बैठ छांह में, ग्रीष्म गर्व दिखलाता ॥४२॥

पिया हुआ जल, घबराया सा बनकर स्वेद निकलता।
भिगो भिगोकर गरम देह को पुनः वायु में मिलता।
प्रबल-प्रबल झोंके आते थे तरु विशाल हिल जाते।
अति गम्भीर, अगाध जलाशय खो दरार में जाते ॥४३॥

उदासीन-आनन किसान, यन्त्रवत् हाथ निज साधे।
झुके हुए पंचाग्नि-तपस्या का साधन आराधे।
वह पसीना बहे खून या, जग को क्या है चिन्ता?।
ईख जले या बचे उन्हें तो चीनी की ही चिन्ता ॥४४॥

जब पाषाण समान कृषक का तन हो आया काला।
होने लगा विदीर्ण आँच से भीगा कपड़ा डाला।
दैव-दत्त पीडा-वारण का क्या अधिकार उसे पर?
उसकी इस धृष्टता-मात्र पर प्रकृति हुई क्रोधातुर ॥४५॥

हुआ शीत-ज्वर, पड़ा विचारा लूह शीत का मारा।
बँधे बैल खूँटे पर रोते, कोई नहीं सहारा।
तीन दिवस उपरात बड़े श्रम से धन्वन्तरि आये।
ग्राम-पाठशाला अध्यापक, शास्त्र न व्यर्थ बहाये ॥४६॥

पर उनको अनुभव अनन्त था, कितने रोगी तारे।
लक्षण औ' निदान-भाषण से, ग्राहक कितने हारे।
नहीं यहाँ उत्साह, चिकित्सा में न प्राप्ति की आशा।
इसीलिए कुछ शात पडी थी उनकी सबल सदाशा ॥४७॥

इधर उधर की दवा, दशा अति चिन्ताजनक बताकर।
चले आप अनुपान पथ्य-संयम का पाठ पढाकर।
हुआ ज्ञात जब शुक्र कुँवर को वे अतीव चिन्ता कर।
आये पाँच मील से डाक्टर मनमोहन को लेकर ॥४८॥

डाक्टर स्थेटेस्कोप लगाकर करुण भाव से बोले।
थर्मामीटर, नाडीगति की सख्या से ज्वर तोले।
कर घोषित निमोनियाँ, इसको लेकर फीस सिधारे।
कुछ उपचार कराकर शुक्ला अपने गाँव पधारे ॥४६॥

हुआ न लाभ दवा से कोई या संयम से भाई।
किन्तु दयामयि प्रकृति जननि ने करुणा स्वयं दिखाई।
निराहार, सतोष, समय से हुआ स्वस्थ वह साथी।
गावो में पर जन-जीवन की रक्षा-सुविधा क्या थी ? ॥ ५० ॥

रंगमंच

सर्ग ८

लख धीर धरा को अति अधीर, नभ के उर में करुणा आई।
संकेत ताप हरने का पा, आश्रित नव श्याम घटा छाई।
अब पवन सघन गम्भीर हुआ, गर्मी बढ़ गई घमस पाकर।
प्राणी की दाह-सहन क्षमता, सीमा पर पहुँची अकुलाकर ॥१॥

जल से प्रपूर्ण होती जाती, मेघों की गगरी फूट चली।
वह शीतल और सरस धारा, उत्सुक वसुधा पर छूट चली।
पर गर्म तवे पर प्रथम बूँद सी, छन छन धुवाँ उड़ाती थी।
वह धूल बुझा जलवाष्प, और रज कण को साथ उड़ाती थी ॥२॥

झिल्ली की झंकृति शान्त हुई, गर्विणी उष्णता क्षात हुई।
हर्षित दादुर की गीत मयी, ध्वनि दिग दिगन्त मे व्याप्त हुई।
धुल गई धूल, धुल ताप गया, धुल पर्वत-पृथ्वी-गात गया।
हर तरु पादप का पत्र-सुमन, धुलकर ले आया रूप नया ॥३॥

कृषकों को कार्यादेश मिला, छात्रो को फल-सदेश मिला।
आतप-नग्ना धरती माँ को, हरिताभा का शुभ वेश मिला।
राजेन्द्र कुँवर को इटर में, उत्तम श्रेणी का मान मिला।
शुक्ला को उसी परीक्षा में, सूबे में प्रथम स्थान मिला॥ ४॥

कुछ हृदय और भावुकता ने, संयोग सुप्त अभिलाषा ने।
काशी में दोनों का खीचा जन-सेवा शिक्षा-आशा ने।
यह विद्यालय उस महामना की महा कल्पना का प्रतिफल।
विस्तार, रूप रचना, शोभा, विज्ञान-ज्ञान का स्थल उज्ज्वल॥ ५॥

विद्यालय के ग्रन्थालय में वे लेख देश पर पढते थे।
दीनता और परवशता पढ दुख के भावो में मढते थे।
वाहर आकर, पी विभव सुधा वह भूख भूल ही जाती थी।
विद्युत् प्रकाश की शुभ्र छटा तो वैभव-मत्त वनाती थी॥ ६॥

ऊपर की विविध तरगों के भीतर वडवानल जलता था।
था जीवन तो वाहर सुखमय, कुछ सदा खटकता खलता था।
कुछ अध्यापक भी जोशभरे सेवा-उपकार-विलासी थे।
सगठन और श्रम कष्ट त्याग के भी कुछ कुछ अभ्यासी थे॥ ७॥

जग-लोकतन्त्र था पहुँच चुका, अपने दम्भो की सीमा पर।
फासिस्तवाद भी पहुँच गया, अपने पशुबल की सीमा पर।
भूखे वृक नहीं सँभाल सके, जब शान्ति-व्यवस्था का चोला।
तव विश्व युद्ध का विकट असुर प्यासी जिह्वा से यों वोला॥ ८॥

"मैं प्यासा हूँ मैं भूखा हूँ देना होगा नरमास मुझे।
चर-अचर-रुधिर की अतुल धार पाकर ही रक्षा आस मुझे।
नवयुग निर्माण तुम्हें करना अधिकारी को बल देना है।
रक्षित स्वतंत्रता प्रजातंत्र करने में जीवन देना है ॥ ९ ॥

"इँगलैंड फ्रांस है चाह रहे दुनियाँ का सुख या आजादी।
जर्मनी भेड़िया हिटलर तो ढा देगा जग पर बरबादी।
इँगलैंड उसी का रक्षक है, जो सदा उसी का ग्रास रहा।
जर्मनी किन्तु उसका भक्षक जो नहीं किसी का दास रहा ॥ १० ॥

सेप्तम्बर आया चला गया दे गया युद्ध का रुद्र-दान।
जिससे निबलों को मिल न सकेगा युग-युगान्त तक मोक्षत्राण।
लपलप कर बिजली चमक उठी, फुफकार उठा फण-सहस व्याल।
सुलगती हुई धू धू कर सहसा, जली जगत की चिता-ज्वाल ॥ ११ ॥

हिटलर केहरि तो टूट पड़ा पोलैंड-द्विरद के मस्तक पर।
इँगलैंड फ्रांस के जन-त्राता ललकार उठे इस पातक पर।
भारत बेचारा बँधा हुआ अनजान युद्ध में घिसट उठा।
पर राष्ट्र-चेतना से जाग्रत उसका विरोध-पट उघट उठा ॥ १२ ॥

"मेरे सीने पर हो सवार, कहते लो जग की आजादी।
ओ दम्भ ! घृणित साम्राज्य-वाद, कर लो तुम मेरी बर्बादी।
पर कह तो दो निज युद्ध-ध्येय, निज शान्ति-ध्येय भी बोलो तो।
अपनी माया से मुग्ध जगत-सम्मुख रहस्य-पट खोलो तो ॥" १३ ॥

ललकार कहा, चीत्कार कहा, विनय-स्वर में बहुबार कहा।
न्यायी ने इनसे कान मूँद, अपने को परम उदार कहा।
भारत की राष्ट्रिय महासभा की कार्यकारिणी सभा जुटी।
सङ्कोच-स्नेह-सम्मान रोप-प्रतिकार-रङ्ग-रंजिता पटी ॥ १४ ॥

वह मुसलिम लीग पवित्र परम साम्राज्यवाद की नवरानी।
राष्ट्रीय सौत से उलझ गई, पति से थी प्रणय-कलह सानी।
केकयी चाहती थी पहले लेना निज पाकिस्तान दान।
स्वातन्त्र्य-राम बनवासी हों या पति का जाये चला प्राण ॥ १५ ॥

हिन्दू दल रक्षक महासभा आजादी के प्रति व्याकुल थी।
संघर्षों से पर डरती थी सैनिक-शिक्षा को आकुल थी।
सेना में या नौकरियों में युवकों को स्थान दिलाना था।
इसलिए युद्ध में भरती हो अवसर का लाभ उठाना था ॥ १६ ॥

लिबरल दल का दिल दहल उठा अँगरेजों पर सङ्कट देखा।
उनकी हमदर्दी दुख श्रद्धा का कवि को नहीं ज्ञात लेखा।
विजयेच्छा से हरिकीर्तन या पत्रों मे अमित प्रचार हुआ।
काग्रेस की कटु प्रतिरोध नीति पर उन्हे क्षोभ-उद्गार हुआ ॥ १७ ॥

पर काग्रेस बन्धन मे रह कर उनको सहायता दे न सकी।
वह तो स्वतन्त्रता-प्रजातन्त्र-रक्षक का शुभ यश ले न सकी।
इसलिये नवम्बर आते ही उसने मन्त्रीपद त्याग किया।
फिर निज रचनात्मक कार्यों से उसने सक्रिय अनुराग किया ॥ १८ ॥

बदी-युग

अब एक क्षोभ की नयी लहर आशंका की नूतन धारा।
इस अखिल देश मे फैल गई पा असहयोग का स्वर प्यारा।
काम्रेस या नौकरशाही में फिर आया वह नूतन तनाव।
राष्ट्रीय युवक जन के उर में, जागा रिपु से प्रतिकार भाव ॥ १९ ॥

छायी बेचैनी सी अजीब जागृत छात्रों के जीवन में।
राष्ट्रीय समस्या-बोध हेतु जागी इच्छा उनके मन में।
सारे समाज मे जागृति को अध्ययन-केन्द्र कुछ नियत हुये।
जिसमें कुछ कुशल परीक्षण से राष्ट्रीय छात्र ही चुने गये ॥ २० ॥

पर गुप्त समिति यह रही परम खुफिया जन जिससे जान न लें।
या देश-द्रोहरत, प्रगति-शत्रु कुछ छात्र उन्हें पहचान न लें।
इन गुप्त समितियों में बैठे, संस्कृति-राजस्व-विचार हुए।
दुनिया के उद्भव से विकास तक के बहुतत्व-प्रचार हुए ॥ २१ ॥

ईश्वर-द्वारा कठपुतली सा, नाचता रहा जो जगत ज्ञात।
उसमें आर्थिक प्रेरणा-मंत्र, का हुआ इन्हें भी ज्ञान प्राप्त।
क्या कला और क्या सस्कृति हैं कैसे ये सब धन की दासी!
दुनिया दो वर्गों में विभक्त, प्रत्येक रुधिर की है प्यासी ॥ २२ ॥

क्या धर्म और क्या नीति रहे इतिहास विकास कराने में।
अपना क्या होगा मार्ग आज उन्नत निज राष्ट्र बनाने में।
इस भाँति दीन जन जीवन की बौद्धिक कल्पना बनाते थे।
चौकन्ने कमरे बन्द किये सघों में शिक्षा पाते थे ॥ २३ ॥

रंगमंच

राजेन्द्र कुँवर ने श्रद्धा से रचनात्मक कार्य सँभाला था।
जब समय मिला तब दृढता से व्रत यथाशक्ति निज पाला था।
अध्ययन-समिति से शुक्ला की रुचि साम्यवाद की ओर हुई।
समता के अद्‌भुत स्वप्नो से मानस में मधुर हिलोर हुई॥ २४॥

यह साम्यवाद-योजना देश में लगती तनिक विदेशी थी।
अँगरेजी शिक्षित युवकों को आकर्षक श्रमिक हितैषी थी।
मजदूरों का संगठन ट्रेडयूनियन-विकास प्रणाली से।
सक्रिय प्रयोग आरम्भ किया, अपने निश्चय बलशाली से॥ २५॥

मिल कई एकड में फैली थी यान्त्रिक कुरूपता जडता ले।
काला मुख नभ की ओर उठा खडखड ध्वनि की अक्खडता ले।
थी घने धुएँ की धूम मची हर चीजें काली रँगी हुई।
गहरे विषाद की छाया सी यद्यपि विद्युत् छवि जगी हुई॥ २६॥

चारो दिशि में दीवार घिरी मजदूर जनो का आश्रय थी।
जिसके अगणित लघुभागों में कुटिया श्रमिकों की निश्चय थी।
वे पाँच पाँच फिट लम्बे औ' चौडे कमरे टिन से छाये।
हर एक कोठरी में छे-छे, मजदूर वास सुख से पाये॥ २७॥

इनके भी घर पर बच्चे थे, कुछ यहाँ विचारे लाये थे।
पर इनके भोजन दूध और, शिक्षा को ये क्या पाये थे।
गन्दा जल, गन्दी हवा, और वे नियम समय-श्रम करना था।
परिवर्तनशीला ड्यूटी से, बेमौत उन्हें तो मरना था॥ २८॥

घर पर कर्जे से जब यहाँ, बेचारे भागे आये थे।
परचून बेचनेवाले से आकर भी गये सताये थे।
जब तीस दिनो में दो दिन ही कुछ सुख से उन्हें बिताना था।
अगले दिन श्रम से चूर हुए निद्रा या मौत बुलाना था ॥ २६ ॥

"तो दो दिन ही फूँको छानो, बोतल भी एक उडाने दो।
इस बहती जीवन-सरिता को, सब बाँध तोड वह जाने दो।
फिर आलस बेकारी कुरोग में फँसे फँसे मर जाने दो।
सुखियो शिक्षितों समृद्धों को संयम का पाठ पढाने दो ॥ ३० ॥

यह अधीरता, यह असंतोष, यह ज्वाला घोर निराशा थी।
रक्षा का कोई मार्ग न पा, मर जाने की अभिलाषा थी।
पर बाइसिकिल पर पैंट पहिन कुछ युवक यहाँ पर आते थे।
नम्रता और हमदर्दी से, उन्नति का मार्ग बताते थे ॥ ३१ ॥

"इनके जीवन को मानव क्या सुखमय कदापि कर सकता है?
इनकी ललाट-लिपि वक्र, एक परमेश्वर ही हर सकता है।
इसलिए व्यर्थ व्याख्यान-सभा संगठन आदि के दिखलावे।
निज सुख-दुख पूर्ण शान्त-जीवन पर है उपद्रवो के धावे ॥ ३२ ॥

पर छात्रों के सम्पर्कों से, श्रमिकों में कुछ विश्वास हुआ।
निस्वार्थ परिश्रम-कष्ट देख, उनमें नव आत्म-प्रकाश हुआ।
मिल के श्रमिको का संघ बना, उद्देश्य-लक्ष्य निर्धारित कर।
कुछ उत्साही तैयार हुए अब उन्नति-ज्ञान प्रचारित कर ॥ ३३ ॥

मिल-मालिक-सम्मुख एक दिवस वह विस्मृत विनयपत्र आया।
जिसकी मॉगों को देख-देख, धनपति का भी सिर चकराया।
थी अवधि सोचने की उसको, श्रमिको को मॉगें पानी थीं।
उसको यह जागृति ज्वाल पुलिस शासन से दवा बुझानी थी॥ ३४॥

उसको महलों में रहना था, गुलछर्रे खूब उडाना था।
भरना तिजोरियॉ लाखों से अगणित हिस्से बढवाना था।
थी कहॉ एक भी कौडी जो फाजिल श्रमिको को दान करें॥
भुक्खड-लोभी-भिखमगों का कैसे नित नव कल्याण करें॥ ३५॥

सारे श्रमिकों ने आज काम पर जाने से इनकार किया।
उस व्यस्त कारखाने को भी मरघट समान वीरान किया।
पूॅजीपति के पद के नीचे से सहसा पृथ्वी सरक गई।
यह देख संगठन, हृदय-पटी कुत्सित कराल वह दरक गई॥ ३६॥

घवडा नेता को बुलवाया, खुद जा श्रमिकों को समझाया।
कुछ शर्त विना मंजूर किये, सद्भाव-प्रेम अति दिखलाया।
पर श्रमिक नही यो कच्चे थे, वातों में उसकी आ जाते।
थे नहीं दूरदर्शी कुवेर कुछ मॉगें जो दिलवा जाते॥ ३७॥

जव नही समस्या सुलझ सकी, झुक सके न श्रमकर अभिमानी।
तव क्रोधित मिल मालिक ने उनका गर्व मिटाने की ठानी॥
दौडे लेकर वे कार शीघ्र श्री-मजिस्ट्रेट के चरणों में।
अपने सर की पगडी उतार रख दी साहेब के चरणों में॥ ३८॥

फिर अपना संकट बतलाया, जो वर्ग-मात्र का संकट था।
सबसे बढ़कर साम्राज्यवाद के प्राणो का जो सकट था।
"यदि यह तृष्णा से भरी छूत, श्रमिकों के जीवन में आई।
तो समझ लीजिए बस हुजूर अपने प्राणो पर बन आई" ॥ ३९ ॥

उपहार भोज-चन्दो-द्वारा उनकी सेवायें याद हुई।
श्रीमान् कलेक्टर को जागृति की भीषणतायें याद हुई।
शिक्षा आश्वासन दिया "आप जायें बिल्कुल निश्चिन्त रहें।
हॉ घूस-प्रलोभन देकर कुछ मजदूर काम के लिए गहें" ॥ ४० ॥

पहले दो दिन हडताल रही फिर कुछ गद्दार मिले आकर।
धरना तो अब अनिवार्य हुआ उनको जो लायें लौटाकर।
धरनेवालों ने यदपि वहॉ बल का कुछ किया प्रयोग नहीं।
पर क्या पुलीस ऐसा स्वर्णिम अवसर सकती थी चूक कहीं ॥ ४१ ॥

घटनास्थल पर कुछ भीड जमी, तैयार पुलिस दौडी आई।
लाठी डण्डों से मार मार, फिर टियर गैस भी फैलाई।
जागृत श्रमिको नेताओं को शाही बन्धन में बॉध लिया।
नौका का नाविक छीन लिया, निज कार्य निमिष में साध लिया ॥ ४२ ॥

र.र फूटे थे, कर टूटे थे पर दिल न अभी तक टूटे थे।
पीड़ितों-गरीबों-श्रमिको के, दृढ निश्चय तनिक न छूटे थे।
नेता नवीन तैयार हुए, सिर नये टूटने को आये।
उनके साहस ने मिल-मालिक के भी यों छक्के छुडवाये ॥ ४३ ॥

दो चार दिवस तक पुलिसों ने, अपने दिल के उद्गार रँगे।
खूँ से लाठी के तार और गोली के गोलाकार रँगे।
पर हटा नहीं मजदूर सघ गिरि-सा निज प्रण पर डटा रहा।
पूँजीपति भी तो जोंक-सदृश अपने निश्चय से सटा रहा॥ ४४॥

पर बहुत लगे भूखों मरने घर में न अन्न का दाना था।
धन था न संघ के पास हाय फिर मदद कहाँ से पाना था।
गद्दार बहुत आये पहले, फिर कुछ ग़रीब भी बेचारे।
क्रम क्रम से मिल्ल चल पड़ी और जागृत मजदूर गये मारे॥ ४५॥

इस भाँति महानुष्ठान यज्ञ का भीषण उपसंहार हुआ।
कोई संस्था सगठन नहीं उनके हितार्थ तैयार हुआ।
जो भूख उन्हें भड़काती थी असहाय वही कर जाती थी।
जनता-शोषक सरकार उन्हें निज बल से पंगु बनाती थी॥ ४६॥

प्रयोग

सर्ग—१

थे इधर तो विद्यालयों में छात्र पुस्तक पढ़ रहे।
पर उधर शोषित दीन-जन के रोष-पारद चढ रहे।
था विगत-स्मृति के क्षोभ-जल से पूर्ण मानस हो रहा।
अब तो प्रतीक्षा शाति से था देश धीरज खो रहा ॥१॥

अब असन्तोषानल-ज्वलित जल भाप सा उद्विग्न था।
वह यह व्यवस्था उडा देने के लिए संविग्न था।
नद बाँध तोडा चाहता था जगत जल-प्लावित बने।
अन्याय शोषण-गर्व के भी दुर्ग अनुधावित बने ॥२॥

था समय ऐसा अव्यवस्थित क्या भविष्य न ज्ञात था।
गाँधीं महात्मा के हृदय में भाव-करुणा व्याप्त था।
छल-कपट स्वार्थिक क्रूरता भी आंग्लजन की याद थी।
पर शत्रु सकट में फँसा करुणा यही आवाद थी ॥३॥

आजाद नेहरू वीर ने कर्त्तव्य-उद्बोधन किया।
जाग्रत अजाग्रत वर्ग को सग्राम का नव स्वर दिया।
यह राष्ट्र-मोटर यंत्र अपने स्थान पर जमता रहा।
यदि गति न पाता, वेग से तो शीघ्र फट जाता अहा ॥४॥

थे युवक व्याकुल कर्म को, थे कृषक जन भी सर्वथा।
पर ज्ञात थी समृद्धजन को अव्यवस्था की व्यथा।
सभव जनादोलन-प्रभंजन में विवेक कभी भला ?
यह क्रान्ति अधी घोट देती, सज्जनों का भी गला ॥५॥

था इधर बापू ने सँभाला राष्ट्र का सब भार था।
उन अनुभवी दृढतर करो मे प्राण का उपहार था।
जो युवक जन के सामने सक्रिय विरोध-विचार था।
वह दूरदर्शी इन्द्रजालिक को नहीं स्वीकार था ॥६॥

अध्यात्म का मणि-दीप बापू सत्य का शृगार था।
इस कलह-ईर्ष्या-द्वेषमय जग को सुधा की धार था।
वह स्नेह करुणा धर्म का, अविरत विशुद्ध प्रचार था।
वह तत्वविद्-कर्मण्य भ्रम आलस्य का सहार था ॥७॥

वह सुप्त मूर्च्छित राष्ट्र का शीतल सुचेताधार था।
साम्राज्यवादी दभ-तम को रवि-किरण साकार था।
है यत्र युग में जडित मानव-हृदय को स्पंदन दिया।
यो 'विद्युतीआलोक-पीडित नयन को अंजन दिया ॥८॥

वह था न भारत का महात्मा विश्व-करुणा प्रयोद था।
वह नग्न तन को वस्त्र देता, भुक्षितों को भोज था।
अभिमानियों के गर्व और प्रमाद का उपहास था।
दासत्व-तिमिराच्छन्न जग का सत्य शुभ्र प्रकाश था ॥९॥

वह बुद्ध-ईसा-मनु-मुहम्मद का विमल अवतार था।
वह शुद्ध सतयुग-कल्पना-कल-कण्ठ सुरभित हार था॥
वह व्यथित औ, परतंत्र भारत की सघन हुंकार था।
राष्ट्रीयता के मंत्र का भूषण प्रणव ओंकार था ॥१०॥

वह अबल-तन, वह विमल-मन वह दीनजन का प्यार था।
वह हरिजनों का हरि, व्यथित का सबल चक्राधार था।
वह प्राच्य-संस्कृति-सूर्य, हिमगिरि सा अचल प्रणनिष्ठ था।
गंभीर सागर-सा, सरित-सा सदय जनता-इष्ट था ॥११॥

वे तीन निर्बल अस्थियाँ थीं वज्रमूल दधीचि की।
वे नवल देवासुर-समर की, पुण्य पवि थीं प्रीति की॥
यह सत्य शुद्ध महान् उज्ज्वल कीर्ति का वरदान था।
यह जागरण का देवता, यह विश्व का सम्मान था ॥१२॥

उन सबल लाठी-युत करों पर, अखिल भारत-भार था।
उद्दाम यौवन का नहीं, उनमे अधीर विचार था॥
चालीस में जब बम्बई में राष्ट्र-अधिवेशन हुआ।
तब उग्र कोमल नीति में बहु वाद का पेषण हुआ ॥१३॥

वहु उग्र-सक्रिय नीति के आवेशमय व्याख्यान से।
चढता हृदय-पारद उतरता वृद्ध की मुसुकान से।
श्रोता अनेकों बुद्धि-तर्क-विचार-उद्भावित हुए।
कुछ अमर-मोहक के सवल व्यक्तित्व पर मोहित हुए ॥१४॥

स्वीकार है, "रिपु ने न अव तक ध्येय निज रण का कहा।
दो सौ वरस से छल-कपट से राष्ट्र-धन हरता रहा।
यह पातकी है घोर तर, प्रतिकार का भागी सही।
प्रतिकार प्रतिहिंसा मनुज की वृत्ति उज्ज्वल पर नहीं ॥१५॥

"यदि शत्रु संकट में फँसा जीवन-मरण-संघर्ष में।
तो है नहीं यह उचित धक्का दें उसे अपकर्ष में।
हम आत्म-वल संचित करें निज वल परीक्षा ही करें।
दृढ वज्र व्यापक संगठन से उच्च जागृति-स्वर भरें ॥१६॥

"जो सरल प्रश्नों से निरुत्तर हो कठिन क्यों दें उसे ?
गुड से मरे यदि शत्रु तो विप क्यों हलाहल दें उसे ?
यदि है कसौटी सरलतम निश्चय, निरापद, न्यायमय।
तो उग्र प्रतिकारी कहानी का हमें होगा न भय ॥१७॥

"यदि रूस, चीन, अमेरिका, इँगलैण्ड की जनता तथा।
जाने हमारी भावना, अन्यायमय शासन कथा।
तो विश्व-जनमत से हमारा पक्ष अति होगा प्रवल।
साम्राज्यवादी दंभ भी परदा खुले होगा अवल ॥१८॥

"उससे करें स्वातंत्र्य-याचन क्या स्वयं असमर्थ जो।
स्वाधीनता-रक्षार्थ निज करता अनेक अनर्थ जो।
सुख गर्व और विलास जिसका हो रहा सब चूर है।
फिर भी न तृष्णा राज्य-मद होता अभी तक दूर है ॥१६॥

स्वातंत्र्य मिलता है नही, लेते उसे नर त्याग से।
संकल्प-जागृति, संगठन, दृढ देश के अनुराग से।
स्वातंत्र्य की है माँग रखना व्यर्थ प्यारे भाइयो।
भाषण-स्ववशता की समस्या ही प्रथम सुलझाइयो" ॥२०॥

हो मंत्र-मुग्ध अपार जनता ने कहा अभिमान से।
उस एक कर्णधार मे विश्वास-श्रद्धा-ज्ञान से।
"तू है हमारा राम, और रहीम तू, घनश्याम है।
हम है तुम्हारे भक्त-अनुचर, नीति तव सुखधाम है" ॥२१॥

अब अस्त्र सत्याग्रह-प्रवर्तक वीर मोहन दास ने।
राष्ट्रीय रथ-निर्देश कर मे लिया ज्ञान-प्रकाश ने।
पर मार्ग घोषित था न अन्तर्प्रेरणा-विश्वास था।
उत्सुक रहस्य-विलास से आच्छन्न नीति-प्रकाश था ॥२२॥

अब चतुर वाइसराय को निज पत्र-कुल-प्रेषित किया।
इस सरलतम सी माँग से वह हृदय अन्वेषित किया।
पर आपने कर ध्यान निज देशी व्यवस्था-शाति को।
क्षतिकर समझ यह माँग, क्षण मे दूर की जन-भ्राति को ॥२३॥

प्रयोग

अब सोचती थी देश-जनता कौन सा कर्तव्य है।
"यह गर्वमय उद्दण्ड पशुता क्या कभी क्षन्तव्य है?"
पर धीर गाँधी था हिमाचल सा अचल इस काल भी।
था उसी अंगुलि से नियन्त्रित देश-भारत-भाल भी ॥२४॥

पर एक सध्या मे अमा की वीर सात्विक सूर्य ने।
शशि पूर्ण प्रकटाया मनोहर, साधना के सूर्य ने।
निज साधना का गुप्त फल लाया विनोवा सामने।
यह शात, राष्ट्र-विवेक आया रोष-शासन थामने ॥२५॥

गभीर स्वर मे देश का उद्देश्य सत्य वता गया।
'भारत न नर-संहार-इच्छुक' तथ्य यह जतला गया।
"हम सगठित डाके कतल मे आज अन्तर्राष्ट्र के।
देंगे नहीं सहयोग धन-जन से कभी स्वीकार के ॥२६॥"

आश्चर्य था प्रतिमूर्ति है, यह कोन मोहन दास की।
हे क्षीण-तन उज्ज्वलमना, सन्मूति ज्ञान-प्रकाश की।
आया क्षितिज पर और, शासन को चुनौती दे गया।
निज देश की स्थिति साफ कर कुछ दण्ड उसका ले गया ॥२७॥

जो क्षोभ-धारा उमडती थी राष्ट्र-संयम-नीति से।
वह मार्ग पाकर वह चली, इस शात रण की प्रीति से।
श्रद्धेय गाँधी को दिखाना भारतीय विचार था।
गतिरोध मित्रो के अनय का, शात-शुद्ध प्रचार था ॥२८॥

"जो दमन, पशु-बल-आक्रमण-तम के लिए मार्तण्ड हैं।
अगणित युगो से न्याय औ' स्वातंत्र्य दीप अखण्ड है।
जो नागरिक-अधिकार, वैधानिक कला के स्तंभ हैं।
पद-दलित भारत के लिए, वे हाय! जाग्रत दंभ है ॥२६॥

यद्यपि विनोबा ब्रह्मदत्त सुशांति की प्रतिमूर्ति थे।
वे सत्य और अहिंसता की विमल चल कल-कीर्ति थे।
पर विश्व-नभ में इन ग्रहो का वह न दीप्त प्रकाश था।
जैसा जवाहर पूर्ण-शशि का ज्ञात नित्य विकास था ॥३०॥

परिचय बिना जग के हृदय की भावना हिलती नहीं।
शशि के बिना ज्यों उडुकिरण से कुमुदिनी खिलती नहीं।
सर्वस्व त्याग बिना न आंशिक त्याग का कुछ मान है।
निज श्रेष्ठ निधि का दान ही सम्मानकर बलिदान है ॥३१॥

अतएव बापू ने लगाया दॉव उस रणधीर का।
जो राष्ट्र का प्रहरी सबल उस वीरवर गंभीर का।
जौहर खुलेगा देश का जब वह जवाहर जायगा।
जब विज्ञ अन्तर्राष्ट्र का, भारत-व्यथा दिखलायगा ॥३२॥

वह त्याग की प्रतिमूर्ति जाग्रत बुद्धि का भडार है।
वह कर्मयोगी तेज का जलता हुआ अंगार है।
वह साधना से तप्त कंचन रत्न-ज्योति-प्रसार है।
उद्बुद्ध भारत के हृदय का वह प्रबल उद्गार है ॥३३॥

ले कर्म की दृढता अतुल पाश्चात्य जग से आ रहा।
आश्चर्य, प्राची को वही अनुपम विवेक बता रहा।
संस्कृति-युगल का अरुण, व्यापक वरुण सा बलवान है।
चिर तरुण करुण किसान को, भगवान का वरदान है ॥३४॥

इन तीस वर्षों में अमित तूफान जिसने है सहा।
प्रति क्षण अटल चट्टान सा, जो लक्ष्य पर निज दृढ रहा।
निज राजकमला ही न प्रत्युत धर्मकमला भी तजा।
जिसने सुखों को छोड चिर-संघर्ष का जीवन भजा ॥३५॥

जो चीन पर, या स्पेन, अथवा अरब-फैलिस्तीन पर।
या आस्ट्रिया अबिसीनिया से देश दीन मलीन पर।
हिंसक वृकों की घूर भी चुपचाप सह लेता नहीं।
परतंत्र भी, समवेदना से हीन रह लेता नहीं ॥३६॥

वह वीर सेनानी जवाहर, दूत गाँधी का अमर।
युवराज नैतिक और वह, फैसिज्म का है रिपु प्रखर।
वह विश्व म नवयुग-सृजन का स्वप्नद्रष्टा उच्चतम।
वह राष्ट्र की निधि मूल्यतम, राष्ट्रीयता-प्रेरक परम ॥३७॥

श्रद्धेय बापू ने चुना उसको नया सत्याग्रही।
इस बात से तो देश में नवशक्ति की धारा बही।
संकोच शंका या झिझक इस नाट्य पर उसको रही।
पर वृद्ध की मधुहास-धारा में झिझक सारी बही ॥३८॥

साम्राज्यवादी सघन-घन ने उसे किन्तु छिपा लिया।
छिउकी पहुँचते ही पुलिस ने कार में बैठा लिया।
ले पक्ष निशिचर वर्ग का इस राहु ने अभिमान कर।
कर ग्रस्त निज कारा-उदर में लिया उसको तुरत भर ॥३६॥

जग देख आकस्मिक ग्रहण, भयभेद से चकरा गया।
यह देख जनता-हृदय पिप्पल पात-सा हहरा गया।
पर रूप अब तक ग्रहण का कुछ ज्ञात होता था नही।
औ' देश भी इस धृष्टता पर मौन सोता था नहीं ॥४०॥

इस न्याय-प्रिय (?) सरकार को भी पाप पचता था नहीं।
अभियोग-नाटक-पात्रता से देव बचता था नहीं।
इस हेतु गोरखपूर में थी न्यायशाला जम रही।
अभियुक्त नेहरू ने व्यथामयि जननि की पीड़ा कही ॥४१॥

"न्यायाधिप शासक, खड़ा हुआ हूँ मैं समक्ष तेरे आकर।
न्यायाधिकार का दंभ लिये, तुम यहाँ उपस्थित इतराकर।
है आज धरा पर प्रलय मचा, यह युद्ध विश्व को निगल रहा।
आक्रामक-रक्षक राष्ट्रों का संघर्ष अबल को बिदल रहा ॥४२॥

"साम्राज्य-शक्ति की होड किये, लोभी-अभिमानी राष्ट्र लडे।
लघु-निर्बल पिछले राष्ट्रों के सर्वस्व उसी में पिसे पडे।
पूछा था हमने युद्ध-ध्येय, पूछा था हमने शान्ति-ध्येय।
पर मौन, क्रुद्ध, ईर्ष्यालु हुए गौराग महाप्रभु अप्रमेय ॥४३॥"

"आवर्ष प्रतीक्षा की हमने जन-क्षोभ-वृत्ति भी शात रखा।
अब विवश बोलने की स्वतंत्रता का हमने प्रस्ताव रखा।
तुमको पर यह स्वीकार नहीं, हमको भाषण-अधिकार नहीं।
तुम आजादी के देवदूत, भारत म वह पिस जाय सही ॥४४॥"

"मैंने अतीत जूलाई में जनता को धैर्य बंधाया था।
सबसे गरीब भुक्खड पीडित गोरखपुर में जब आया था।
उनको साहस-सगठन और नैतिक बल-पाठ पढ़ाया था।
मै हूँ प्रसन्न तुम समझ रहे, मैंने विष-बीज बुवाया था ॥४५॥

"मै एक व्यक्ति की हस्ती से, दोषी कहलाकर आया हूँ।
शासन-सत्ता के ही विरुद्ध अपराध अमित कर आया हूँ।
श्रीमान् राज्य के हो प्रतीक, पर में भी केवल व्यक्ति नहीं।
मै राष्ट्र-भावना का प्रतीक जो आज क्षुब्ध-उद्बुद्ध रही ॥४६॥

"जो अंग्रेजी साम्राज्यवाद से अपना नाता तोड रही।
निश्चय स्वतंत्रता लेने का कर, प्रतिक्षण निजबल जोड रही।
संभव है न्यायाधीश आज, दोषी कहलाया जाने को।
मै खडा हुआ तेरे समक्ष, वरदान न्याय का पाने को ॥४७॥

"पर याद रहे साम्राज्य सबल, तेरा भी त्योंही मौन खडा।
है विश्व-न्यायपति के समक्ष निर्णय-हितार्थ कर जोर खडा।
साम्राज्यवाद की मदिरा में मतवाले सज्ञाहीन हुए।
अधिकार दूसरो का उनको देने में क्रुद्ध मलीन हुए ॥४८॥

"अभिमान और अन्याय यही तेरी हस्ती मिटवायेगा।
भावी इतिहासकार रोकर तेरा यह पतन बतायेगा।
न्यायी शासन ने सात बार मुझको दोषी ठहराया है।
नौ, आठ तथा कुछ वर्ष और, इसमें क्या अंतर आया है।
पर सारे प्यारे भारत का, उसकी अगणित संतानों का।
क्या होगा भाग्य आज, यह तो है, विषय न तुच्छ बहानो का ॥४९॥

मेरे समक्ष यह महाप्रश्न, तेरे समक्ष भी आयेगा।
अपनी इस घृणित उपेक्षा पर साम्राज्यवाद पछतायेगा।
यदि सोच रहे तुम यथापूर्व ही, शोषण करते जाओगे।
भारत की इच्छा के विरुद्ध तुम उल्लू उसे बनाओगे।
कहना है न्यायाधीश यही, अनुमान तुम्हारा झूठा है।
युग-वृत्ति नही तुम परख रहे, इतिहास-ज्ञान तब झूठा है ॥५०॥

मुझको अपराधी कहने का केवल यह तेरा यत्न नहीं।
कितनी करोड़ जनता को ही तेरी तृष्णा कह रही वही।
पर पायेगा यह कार्य कठिन, गर्वित तेरा साम्राज्यवाद।
मैं दोषी हूँ, परवाह नहीं, न्यायाधिप तुमको धन्यवाद ॥५१॥"

प्रतिक्रिया

सर्ग १०

परतत्र देश के जीवन मे, सुख-स्वप्नों का सचार कहाँ?
उसकी निद्रा में जीवन की, अभिनव श्री का सस्कार कहाँ?
यह देशभक्ति की अभिलाषा, फूलों की कोमल सेज नही।
यह देव भीष्म की शर-शय्या, ज्वाला की जिसमें ज्योति वही॥ १॥

इसमें अधिकारों के सुख का, मिलता है चिर-वरदान नहीं।
मानव के नियति-नियत्रण का, मिलता ऊँचा अभिमान नहीं।
अपना अस्तित्व मिटाने का, तिल तिल कर रक्त सुखाने का।
निश्चय हो तो पथ ग्रहण करे, मानव को मुक्त बनाने का॥ २॥

राजेन्द्र कुँवर के आनन पर, कुछ कुछ चिन्ता की छाया थी।
जिससे जीवन में चैन न था, अपमानों की वह माया थी।
देखी जब रायबहादुर ने काशी की शिक्षा की छाया।
देखा कुमार पर राष्ट्रवाद का सकट-घन घिरता आया॥ ३॥

देखा उस दीन सुदामा की, मैत्री का अटल प्रभाव पड़ा।
हित-चिंतक धीर पिता के भी मन में थोड़ा उद्वेग बढ़ा।
राजेन्द्र कुंवर को पास बुला, सम्मुख आसन पर बैठाया।
इस बार अध्ययन-अनुभव को निश्चय प्रयाग का बतलाया ॥४॥

"काशी का नम जलवायु पुत्र, पड़ता तुमको अनुकूल नहीं।
फिर राजनीति-इतिहास-हेतु, सबसे प्रयाग उपयुक्त कहीं।
राजेन्द्र कुंवर ने स्नेह-विवश, आदेश पिता का मान लिया।
इस बार जवाहर नगरी में अपना प्रवास-क्रम ठान लिया ॥५॥

था किन्तु सुदामा के अद्भुत, अनुपम सनेह का मान बड़ा।
उनके विछोह का क्षोभ कठिन, उनके सुख-दुःख का ध्यान बड़ा।
पर स्वयं सुदामा के मन में, ऐसी निर्बलता शेष न थी।
उस प्रतिभाशील अकिंचन में ऐसी भावुकता लेश न थी ॥६॥

अतएव सुदामा ने सप्रेम चिर-सखा कुंवर को विदा किया।
ग्रीष्मावकाश था शेषप्राय जब काशी का प्रस्थान किया।
काशी में थी कुछ शांति किन्तु, जीवन-गति का धीमापन था।
प्राचीन काल की छटा किन्तु उन सपनों में भूला मन था ॥७॥

पर यह प्रयाग तो नेहरू की संस्कृति का शुभ रङ्गस्थल है।
इसमें उनके विद्युज्जीवन का भरा तेज गति है, बल है।
राजेन्द्र कुँवर के मानस में, इसने नवीन उत्साह भरा।
नव ज्ञान-शक्ति के संचय का, जीवन का तरल प्रवाह भरा ॥८॥

प्रतिक्रिया

नेहरू कारा के भीतर था, पर बाहर का आलोक बना।
गाँधी के उर का शात क्षोभ, व्यापक पौरुष का ओक बना।
गभीर प्रशांत महासागर, होता विचित्र तूफानी था।
बापू की शाति-कृपाणी पर, अब भी विवेक का पानी था ॥९॥

संयम की भी तो सीमा थी, अब बापू ने आदेश दिया।
व्याकुल अधीर सी जनता को, अब विशद कार्य-संदेश दिया।
अब कार्य समिति के रत्न धवल, लेकर विरोध की अरुणाभा।
जग के अम्बर पर चमके फिर फैली कारा की जलदाभा ॥१०॥

वंदिनी पीडिता जननी को नूतन पूजा का हार बना।
पहले सुंदरतम सुमनों का अद्भुत सुमेरु श्रृंगार बना।
फिर धीर पुजारी ने रचकर, कोमल कुसुमों की नव माला।
कर सत्य-अहिसा, मंत्र-पाठ पूज्या मा के उर में डाला ॥११॥

यह नैतिक रण आवर्ष चला, शासन का बाल न बाँका था।
बापू ने रिपु के संकट में, सक्रिय विरोध क्या आँका था।
कर रही लीग थी दुरभिसधि, कुछ तो शासन-बल पा जाती।
भरता दिल का अरमान और, मा का तन भी बँटवा जाती ॥१२॥

धमकी देती कुछ मान सहित, सरकार सुने वह प्रेम-कथा।
सहयोग-प्रश्न पर 'नहीं 'नहीं'—करती, रहस्य वह सुंदर था।
काग्रेस ने अपना पद छोडा, आन्दोलन को अभियान किया।
जिन्ना को नई नजात मिली पर उसे घृणा का दान दिया ॥१३॥

सामंतवाद का हिन्दू दल, या लिबरल-जन का दल निर्दल ।
अम्बेदकरी प्रतिभा उज्ज्वल, कम्युनिस्टो की नव क्रांति-प्रबल ।
सबके प्रहार की एक पात्र कांग्रेस अविरल चलती जाती ।
उसके उर में चिर क्रान्ति-प्रभा, उज्ज्वल, निश्चल जलती जाती ॥१४॥

हाँ इन्हीं दिनों में छात्र वर्ग, संगठनशील उद्‌बुद्ध हुआ ।
गुरुओं की चिर अनुदार नीति, पर कभी-कभी वह क्षुब्ध हुआ ।
फटकार–प्यार नेताओं का, आशीष, स्नेह-अधिकार बना ।
प्रान्तों में पाकर नूतन बल, भारत के नभ पर चढ़ा घना ॥१५॥

पर कुछ प्रयाग के छात्रों मे, कोई विशेष अनुभूति नहीं ।
शासक या शासन-यन्त्र रुचिर बनने की शिक्षा नित्य रही ।
काशी-प्रयाग की शिक्षा मे सबसे बढकर जो अतर था ।
प्रतियोगि परीक्षाओं मे ही उस अंतर का अभ्यंतर था ॥१६॥

वह क्या लीला थी शिक्षा की, जिसमें विकास का तत्व भरा ।
संस्कृति का नवल प्रकाश और जीवन का अखिल महत्व भरा ।
परतन्त्र देश में अपने जो, नौकरशाही का शासन था ।
उसमें जनता के सेवक का उसके सीने पर आसन था ॥१७॥

इस आसन में वैभव-विलास सुख आन बान सम्मान जडा ।
कुत्सित शासित होकर के भी, शासकपन का अभिमान जडा ।
प्रतिभा का इसमें प्राण जड़ा, बल का इसमें अरमान जडा ।
इसमें व्यक्तित्व-प्रमाण जड़ा, मानवता का सधान जडा ॥१८॥

इस हेतु उसी आसन पर तो चढने की वह तैयारी थी।
वह धक्कापेल वह उथल-पुथल वह मेधा की बीमारी थी।
इतिहास पढा था भारत का, अंगरेजों का अन्याय पढ़ा।
हाँ, अर्थशास्त्र में कृषकों का दयनीय दैन्य अध्याय पढा ॥१६॥

राजस्वशास्त्र में पराधीनता का कुत्सित अभिशाप पढा।
दर्शन में त्याग तपस्या का अपना आदर्श प्रताप पढा।
विज्ञान-ज्ञान से प्राणि-रसायन-भौतिक बल-वरदान पढा।
डाक्टरी और इजीनियरिंग से औषध यन्त्र-प्रमाण पढा ॥२०॥

पर इनके रचनात्मक प्रयोग से देश लाभ क्या पा सकता?
प्रतियोगि परीक्षा के बाहर इनका प्रकाश क्या जा सकता?
वह डिप्टी और कलक्टर का साहब बनने का सपना जो।
दफ्तर में रहकर फाइल की माला का सुन्दर जपना जो ॥२१॥

अवसर पडने पर जन-जीवन का छलबलसहित कुचलना जो।
गोरे साहब के अपमानामृत को पीकर ही पलना जो।
वह जीवन का था चरम लक्ष्य, इस हेतु ज्ञान का अर्जन था।
न्यू इयर पुस्तकों के रटने में शुद्ध ज्ञान का वर्जन था ॥२२॥

जनता के शोणित के रस से शासन जो शिक्षा देता था।
इन नवयुवकों के विष-वृक्षों का ही किसान रस लेता था।
इस प्रतियोगिता परीक्षा की मृगतृष्णा का ज्वर भीषण था।
इस उच्चाकांक्षा में कितने दीपों का क्रूर प्रभंजन था ॥२३॥

कल्पना

सर्ग ११

एक दिन रविवार का था, सरल उत्सव लास।
घिर रहे थे घन घुमडते, गगन मे सोल्लास।
था धरा ने ढक लिया हरियालियो से गात।
चल रही थी वाष्प-कण से, सिक्त सुरभित वात ॥१॥

आज वन में नाचते, घन देख मत्त मयूर।
छात्र जन के हृदय में, उल्लास का था पूर।
आज सब छात्रालयो का, एक वाद-विवाद।
कुँवर को था वितरना, जिसमे विचार-प्रसाद ॥२॥

दो बजा था मेघ में, था पूर्ववत उल्लास।
छात्र आये क्योंकि वाइस-चांसलर का त्रास।
विषय था—'पुरुषार्थ' पर है, नियति का अधिकार।
थे सभापति—वार्डेन, श्री प्रोफेसर सरकार ॥३॥

सहज ग्रॅगला भेप धारे, हो गये आसीन।
शाति और विवेक-शशि ज्यों गगन पर आसीन।
छात्र मण्डल में विराजा, शाति का सन्देश।
वे लगे फिर बोलने, पाकर विमल आदेश ॥४॥

नवल कोमल तर्क थे, था काव्य-शास्त्र-प्रमाण।
सुक्र शोपनहार तक था, दीर्घकालिक ज्ञान।
थे सभापति मुग्ध लख कर, ज्ञान का उन्मेष।
देश के आशा-प्रसूनों, के विचार-विशेष ॥ ५ ॥

अब खडे राजेन्द्र लेकर, आत्म-बल विश्वास।
अध्ययन अनुभूति का, लेकर प्रकाम प्रकाश।
बोल उट्ठे ले स्वरो मे, सघन घन-निर्घोप।
चमकता था भाल, वाणी मे भरा था जोश ॥ ६ ॥

"गिरि शिखर ये गहन कानन, सरित सर अविराम।
प्रकृति के संघर्ष फल हैं, प्रकृति पौरुषधाम।
चल रहा अगणित युगों से, प्रगति का सघर्प।
क्षुद्रतम कीटाणु से, गज का विकास-विमर्प ॥ ७ ॥

गो-सदृश पशु देखते हो, शस्य-श्यामल खेत।
फूल फल से है अलंकृत, कृषक जन के खेत।
नियति ने उन पर न डाला, है सुधा उपहार।
-षक के सूखे पसीने का, मिला है प्यार ॥ ८ ॥

"सामने जो दीखते ये, विभव के उन्माद।
गगन-चुम्बन निरत ये, सगीत-मय प्रासाद।
पीठ पर भूखे कुली की, लाद कर पाषाण।
शिल्पियो ने है बजाया, श्रम-विषाद-विषाण ॥६॥

आज हम पर चल रहा व्यापारियों का राज।
विश्व में है चमकता, उनके सुखो का ताज।
कब्र से है बोलते पर, लूटे बंग-किसान।
श्रम पिसी उन अस्थियो पर, राज्य का निर्माण ॥१०॥

नियति केवल जग-प्रगति का है कुटिल अभिशाप।
यह महा-कर्तव्य-विष है, हार को है माप।
नियति का करके नियंता का करुण आह्वान।
देश का हमने लुटाया, मधुर स्वर्ण-विहान ॥११॥"

फड़कते लोचन, उठाते, दीर्घ बाहु विशाल।
डालते श्रोता जनो पर, तर्क मोहक जाल।
प्रोफेसर सरकार को कहना पडा, "शाबाश"।
तुमुल करतल ध्वनि-निनादित, हो गया आकाश ॥१२॥

क्षणिक निद्रा से जगे जब छात्र होकर शात।
आ गई थी मंच पर, प्रतिमा कला-सी कात।
वर्ण विद्युत-स्वर्ण का था, तरल शुभ्र प्रकाश।
वदन-शशि-सर-जात सरसिज, सुरभि-सा मोल्लास ॥१३॥

थे नयन सकोच स्मितिमय, पूर्ण ज्ञान-विलास।
बाहु में मजुल अचल, विद्युल्लता का लास।
नवल मुकुलित तनु, सदृश कवि कल्पना सुकुमार।
और प्रतिभा का वदन, पर था सतेज प्रसार ॥१४॥

मुँद गये लोचन अनेकों, दर्शकों के आप।
भक्ति-विस्मय-पूर्ण थी, रति-भाव का न प्रताप।
मंजु वीणा से हुई अब, ज्ञान की गुंजार।
बिखर वसुधा पर गया, सगीत का ससार ॥१५॥

"बंधुओं ने उच्च स्वर में, कहा कर्म प्रताप।
तर्क बल से कर प्रमाणित, नियति का अभिशाप।
किन्तु विद्युत्कण निखरते हैं, गगन में तात।
क्या न उल्कापात में, संयोग का सघात ॥१६॥

"शैल, शृंग, उपत्यका में, एक सृष्टि विकास।
किन्तु उनके रूप अन्तर में नियति का हास।
डारविन के पूवजों का, क्या समान प्रसार?
नियति से कपि एक, नर का दूसरा अवतार ॥१७॥

कृपक के श्रम पर न पड़ता क्या तुषाराघात?
क्या न इन अभ्र कपों पर, विद्यु का आघात?
पुरुष करता व्यर्थ पौरुष पर सदा अभिमान।
क्या न निर्बल नियति नारी-शक्ति का है ध्यान?॥१८॥

"कब किया नारीत्व ने कापुरुष का सम्मान ?
नियति ने श्रम-हीनता को, कब दिया वरदान ?
श्रम करो सविवेक निर्भय, नियति तेरे साथ।
किन्तु है गर्वान्ध पौरुष, दीन और अनाथ" ॥१६॥

मूक थे सब छात्र थे, आचार्य मूक नितात।
औ न प्रतिमा को मिला, कुछ साधुवाद सुखात।
किन्तु उसकी विजय की, हर हृदय पर थी छाप।
दर्प था राजेन्द्र का कुछ, आज विजडित आप ॥२०॥

तर्क के घन छँट गये थे, नीर उर अम्लान।
हार से उसको मिला, नव-चेतना का दान।
आज उसके हृदय में था, मोम का मृदु घोल।
आज थे कुछ लाज गर्वित, सरस उसके बोल ॥२१॥

आज स्वप्नों में किरण की, एक रेखा क्षीण।
बाँधती व्यक्तित्व ।उसका, वह बना था दीन।
मित्र कुछ संगीत-शिक्षण, की लिये थे चाह।
शुष्क जीवन में कराता, जो पियूष-प्रवाह ॥२२॥

जो दिलाता शैल-खंडों को प्रतिध्वनि दान।
निर्झरों को चिर-मुखर कल-कल कला का मान।
जो मृगों से है सहाता, समुद विषमय बाण।
मुग्ध-वीणा-स्वर हुए, उत्सर्ग करते प्राण ॥२३॥

श्रान्ति को सगीत देता, नींद की मृदु गोद ।
शान्ति को संगीत देता, भक्ति का आमोद ।
क्रूर उर को कर सुकोमल, स्निग्ध ज्यों नवनीत ।
व्यथित जग पर जो गुँजाता, स्वर्ग का संगीत ॥२४॥

है नहीं सगीत से जिसको जरा भी प्यार ।
वे अधम विश्वासघाती पशु परम खूँखार ।
पूज्य गुरु सुखदेव जी, संगीत शिक्षाचार्य ।
थे सरल प्राचीन युग के, प्रेम पर आचार्य ॥२५॥

वायुलीन सरोज ने ली, शिवकुमार मृदंग ।
श्याम ने तबला विमल ने, मधुर वारि-तरंग ।
यन्त्र के सगीत का था, यह अपूर्व समाज ।
कंठध्वनि थी परुष लगती, गर्दभों से लाज ॥२६॥

इसलिए मुख-गीत लेने का न था संयोग ।
यंत्र में भी यदपि था, आनन्द का संयोग ।
बालिकाओ के लिए था, कण्ठ का संगीत ।
कुशल प्रतिमा ने लिया था, बीन का स्वर जीत ॥२७॥

अलग अपने कक्ष मे, ये मूर्तियाँ सुकुमार ।
मृदु उँगलियों से उठातीं, बीन की झंकार ।
मद्र रव में मूर्च्छना उठती गमकती मीड ।
युवक जन उर में मचलती, भावना की भीड ॥२८॥

छात्र कुछ करते पियानो का कभी उच्चार।
किन्तु उर में हो न पाता, स्नेह का संचार।
इस तरह चलता रहा वह, कल्पना का लोक।
क्यों उन्हें हो याद भारत में भरा है शोक ?२६॥

× × ×

था नवम्बर में नियत, दीक्षांत का संस्कार।
हो गया इतिहास परिषद्-कार्य-क्रम तैयार।
खेलिए मेवाड़ के उस, पतन का इतिहास।
आज अगणित पतन का जो, बना पूर्वाभास ॥३०॥

चुन लिये थे पात्र सब ने, सुरुचि के अनुसार।
पड गया राजेन्द्र पर श्री, अजयसिंह का भार।
कितु नारी पात्र को होते न छात्र तयार।
विफलता का और था उपहास-भय संचार ॥३१॥

डाक्टर वी० दास पर था, अधिक चिन्ता-भार।
प्रगतिशिला प्रतिभ प्रतिमा ने किया स्वीकार।
बन गई वह मानसी ले, नियति का अधिकार।
पूर्ण आयोजन हुआ, साफल्य का अनिवार ॥३२॥

विश्वविद्यालय विनिर्मित नाट्यशाला रम्य।
आज जिसके मंच पर था, नाट्य का आरम्भ।
विद्यु के आलोक से अब जगमगाया हाल।
दर्शकों के रूप-छवि-उल्लास का क्या हाल ?३३॥

अब बुझे सब दीप केवल मंच पर आलोक।
बन गया सबकी प्रतीक्षा, का वही था लोक।
मंच पर आये प्रथम गोविन्दसिंह महान्।
और आ भूषित हुआ वह अजयसिंह बलवान ॥३४॥

प्रश्न उठा युद्ध का, मेवाड संकट बात—
चल पडी, पर शीघ्र बदला, दृश्य पट-संपात।
आ गये रण को अमरसिंह था पराजय भाव।
वृद्ध सेनाध्यक्ष ने, डाला नवीन प्रभाव ॥३५॥

थी अमर सत्यावती तो तेज की तलवार।
किया जिसने अमरसिंह को युद्ध को तैयार।
दृश्य बदले और आई मानसी सुकुमार।
स्वर्ग की भूली किरण सी या दया साकार ॥३६॥

मानसी देकर भिखारिन को अशर्फी दान।
मुग्ध सी आह्लाद-पुलकित, सुन रही जय-गान।
मंच पर त्यों ही हुआ, श्री अजय का अवतार।
तेज आया खोजने अपने हृदय का हार ॥३७॥

"मानसी तुम धन्य हो, यों अतिथि-सेवा-लीन।
गा रहे यश-गान तेरा, जगत भर के दीन।
कल सवेरे युद्ध को मैं कर रहा प्रस्थान।
है अनिश्चित लौटना, अब दो विदा का दान ॥३८॥

मानसी कह 'ओह' ! अपना सर झुका कर मौन।
सोचती थी जगत में अम्लान सरसिज कौन?
"मानसी यदि मैं न लौटा, तो तुम्हें दुख क्या न ?"
"दुःख होगा" कह हुई फिर शांत वह अति म्लान ॥३९॥

"जानती हो क्या गहन मेरे हृदय का राग।
जो तुम्हारे प्रति, तुम्हें क्यों यों अतर्क्य विराग?
क्या तुम्हारा प्रेम मुझ पर है नहीं सुकुमारि ?"
"है, हमारे प्रेम पर नर-मात्र का अधिकार ॥४०॥"

"मानसी मैं मूर्ख हूँ, क्या यह विशद आकाश।
एक ओछे हृदय का, स्वीकार करता पाश ?"
मै चला करना क्षमा, शशि-लोक के संगीत।"
"शीघ्र जाओ विजय पाओ प्रेम पावन-मीत ॥४१॥"

"किन्तु रण के घायलों की वह करुण चीत्कार।
और उनके स्वजन के उर की व्यथा का भार।
दूर करना है हमारा, मानवी अधिकार।
शुद्ध सेवा-पथ-रहित, नारीत्व को धिक्कार ॥४२॥

गिर गया परदा हुआ, अंकित अमर वह चित्र।
ज्योतिमय संगीत गूँजा, वह नितांत पवित्र।
देश में है हो रहा, नारीत्व का उत्थान।
है हमे करना इसी, उत्थान का सम्मान ॥४३॥

× × ×

पूर्ण-शिक्षण के लिए, राजेन्द्र था सविवेक—
विश्वविद्यालय शिविर का वीर सैनिक एक।
सीखता था शस्त्र-चालन, अश्व का आरोह।
सैन्य के विज्ञान का पढ, पूर्ण ऊहा-पोह ॥४४॥

और छात्रों में रही कुछ, अफसरो की चाह।
कुछ रही अँगरेजियत की बू तथा परवाह।
किन्तु था स्मृत कुँवर को निज देश का अपमान।
इसलिए वह फूँकता नव-चेतना का प्राण ॥४५॥

चल रही थी देश-गौरव-शैल से वह धार।
था न वर्षा-वेग जिसमे, शरद का अधिकार।
कार्य चलता शासकों का देश में निर्बाध।
क्षुब्ध होता जगत का जनमत पयोधि अगाध ॥४६॥

लड रहे जब मित्र जनता के लिए सग्राम।
लोक की स्वाधीनता के हेतु कटु अविराम।
भारतीयो के स्वरो पर क्यों भला प्रतिबध।
चल रहे क्यों नीति ऐसी कुटिलता मय अध ॥ ४७ ॥

टिक न सकते दम्भ के घन आज क्षण भी एक।
चल रहा था सत्य का व्यापक प्रभजन एक।
मुक्त कारा से किया राष्ट्रीय जन को आप।
भूल जाये जगत जिससे अनय का अभिशाप ॥ ४८ ॥

और शासन की प्रतिष्ठा भी रहे साधार।
इसलिए वे कर रहे थे संधि का व्यापार।
हो गया यों व्यक्तिगत संग्राम का अवसान।
और बापू की विजय का तना भव्य वितान॥ ६९॥

सर्ग १२

भावना

युवकों के जीवन की उमंग ।

बढ रही घोर गर्जन करती, जैसे सागर की नव तरग ।
सयत थे उनके भाव किन्तु, थे फडक रहे सब अग अग ।
था शिथिल राष्ट्र का बंध हुआ, पर सुप्त न था मन का उभार ।
अब पराधीनता के व्रण से उठता पीडा का नया ज्वार ।
उन रूपकोमला बालाओं में भी ज्वाला का नव विकास ।
प्रतिभा के मानस का प्रकाश, राजेन्द्र आदि का अनल पाश ।
चढ़ रहा अनय-संशोधन को, सारे भारत में नया रंग ।
बढ रहा प्रलयवाही भुजग ।। १ ।।

जल उठी प्रलय की चिता-ज्वाल ।

जब अमरीका में क्यूरूसू, था फेंक रहा निज प्रणय-जाल ।
तब शात जलधि के नभ-मडल पर अति काला आवरण डाल ।
बिखरे अमरीकी द्वीपों की, सुख-निद्रा सहला मद मद ।
अपने खूनी पंजो से उनके कठो का कर बज्र बध ।
उस शात और निश्चेष्ट सिधु के सीने पर रच कर ताण्डव ।
रण के जलयानों को बिखेर, कर दिया समर का रव भैरव ।
नर शोणित से कुछ दिखा आज प्राची का मुख विकराल लाल ।
जग की जनता का बुरा हाल ।। २ ।।

भूखे प्रशांत की बडव-ज्वाल ।

बन रही आज वह लाल लाल उसकी भीषण लपटें कराल ।
क्या हुए आज यह देख विकल साम्राज्यवाद के वे दलाल ।
जो कहते थे है उचित चीन-संहार और भारत-विनाश ।
जो दे निबलों की निर्दय बलि थे बढा रहे उसकी हुताश ।
वे वैद्य कहाँ ? क्यों रोते है जब किया प्रबल वह जठरानल ।
शठता की कृत्या लौट पड़ी, जब उनके ही सर पर विह्वल ।
तब आज नहीं क्यों नाच रहा इँगलैंड मिला स्वर और ताल ।

क्यो होते है ऐसे बिहाल ? ॥ ३ ॥

"देखो देखो विश्वासघात ।

इस क्रूर निपन ने किया 'पर्ल' बंदर पर कैसा वज्रपात ।
होगया आक्रमण कुटिल इधर चल रही संधि की उधर बात ।
ले लिया हवाई द्वीप और फिलिपाइन का भी कुछ प्रदेश ।"
श्री रूजवेल्ट ने चर्चिल ने मिल दिया न्याय का महादेश—
"इस नीच देश का नाश नहीं तब तक न विश्व को मिले चैन ।
इसके विनाश के क्रूर कार्य मे नहीं दया से मुँदें नैन ।"
भारत होता तो चल जाता क्या ऐसा छल विश्वास-घात ?

करता गेस्टेपो वज्रपात ॥ ४ ॥

हा नौ सेना का सर्वनाश !

कितने दासों का रक्त-तैल, प्रिंस आफ वेल्स का था प्रकाश।
रीपल्स' बना कितनों नंगो, भिखमंगों का कर महाग्रास।
ये अजय दुर्ग, इंगलैंड देश के चिर नौबल के नये गर्व।
ये विश्व-न्याय-सरक्षण के एकाधिकार के महा पर्व।
जापानी नर-पशु बॉध बम्ब तन से, चिमनी को गया भेद।
जो अन्तरतम तक पहुँच गया फट पडा दुर्ग हा महाखेद।
चर्चिल की छाती बैठ गई, हा गया जाति को मरण-त्रास।

डगमगा गई अब विजय-आश ॥ ५ ॥

कितना गतिमय यह सर्वनाश।

उस वीर चीन के सीने पर अगणित वर्षों से कर विनाश।
जापान हुआ निर्बल नितात, था प्राणहीन, यह रही आश।
पर बिजली सा वह टूट पडा, साम्राज्यवाद का दुर्ग ढहा।
शठ के मन से भी तीव्र वेग, दुस्साहस कैसे जाय कहा।
था संघाई का सघ नष्ट, था वेक द्वीप जागरण-हीन।
थे स्याम-मलाया पदाक्रान्त, था हागकाग अब प्राणहीन।
यह बढा दैत्य सहार लिये, भीषण तमसावृत था अकाश।

यह बना जगत का नया त्रास ॥६॥

इतना निर्बल साम्राज्यवाद !

जिसने दुर्मद-रण-बल-मदांध. कुचला स्वतंत्रता का 'प्रमाद' (?)
चिर-सभ्य सुखी उन देशों में फैलाया अगणित भेदवाद।
रस चूस लिया, जीवन चूसा, बन गये स्वयं मनुजाद प्रबल।
लूटे असंख्य धन को बिखेर, कर लिये खड़े उद्योग सबल।
सोने को पानी सदृश बहा. सिंगापुर-गढ़ निर्मित अजेय।
कर एकत्रित सेना अनंत, रिपु को प्रचार से किया हेय।
पर वह बालू की भीत बना, सिंगापुर बर्मा का प्रमाद।

फैले अनन्त झूठे प्रवाद ॥ ७ ॥

जीवन निशीथ के अंधकार।

आई प्राची से आँधी जो हो गया जगत में भय-प्रसार।
फैला विषाद-तम-तोम सघन, आशा-प्रसून बन गये क्षार।
थे सत्य न्याय के शेषप्राय उडुगन भी अब तो तम-विलीन।
चले पड़े विकट उनचास पवन. चर अचर हुए साहस विहीन।
हो रही प्रशांत महासागर पर देखो भीषण अनल वृष्टि।
इन उल्काओं की भय-किरणों से चकाचौंध हो रही दृष्टि।
गिर पड़े प्राण ज्यों अंधकूप में, हुआ विगत जीवन-विचार।

ये रणचंडी के केशभार ॥ ८ ॥

अपना यह भीषण अधःपतन।

था शत्रु द्वार पर खड़ा हुआ, कर रहा क्रूर ताण्डव नर्तन।
आत्माभिमान से रहित किन्तु, हम देख रहे थे प्रमुदित मन।
रिपु की सुन विद्युत गति अपार हम थे तटस्थ, वैराग्य पूर्ण।
नौकरशाही के शासन का तो साहस होता था विचूर्ण।
भय पर भय और भीरुता थी बढ़ती, बढ़ता था अविश्वास।
अपने गौरव की रक्षा का निश्चय खो जनता थी हताश।
झूठे प्रमाद, झूठे घमण्ड, झूठी शंका का भार गहन।

नैतिक जन-बल का हुआ मरण ॥ ९ ॥

बढ़ता अकाल का अंधकार।

जब युद्ध-शांति के दलदल में थे व्यथित हमारे कर्णधार।
जब जापानी संकट नवीन बढ़ता जाता था धुँवाधार।
तब हम न गगन में देख सके मँडराता जिस पर महाकाल।
सब अन्न-वस्त्र ले चले खत्तियों में, मानवता के दलाल।
ये सेठ साहु सत्ताधारी, मानव के शव के व्यापारी।
वे शासन के भी अधिकारी, चुपचाप बढ़ाते बीमारी।
राशनिंग आदि के इंस्पेक्टर, अब निर्भय करते थे विहार।

बढ़ता जनता का क्षुधाज्वार ॥ १० ॥

गाँधी जी का वह मनोद्वंद्व ।

जब जापानी फासिस्तवाद चढ़ रहा, अभय बन मरणफंद ।
तब क्या भारत को रचना है, हिंसा का नूतन उग्र छंद ?
है सत्य अहिंसा बापू के उज्ज्वल जीवन का एक राग ।
तो कठिन परीक्षा में अपना क्या कर दें वे सिद्धांत त्याग ?
है नहीं अहिंसा अस्त्रमात्र स्वातंत्र्य देश का पाने का ।
वह भारत का उपचार दिव्य जग को सुख शांति दिलाने का ।
पर क्या काँग्रेस भी उनकी इस साधना-परिधि में रहे बंद ?
'ओ नहीं ।'' कहा हँस मंद-मंद ॥११॥

बंदी खग की तड़पन अपार ।

भूला अतीत का रागद्वेष, रह सका अहिंसा का न प्यार ।
चिर असहयोग की नीति तोड़, सहयोग-हेतु निज कर पसार ।
की एक विनय—"खोलो बंधन, हम रिपु को करते हैं विचूर्ण ।
दो खोल पींजरा अब तो तुम हम करते इसका प्रलय पूर्ण ।
हम इतना जनबल लिये आज हैं बन्द तुम्हारी कारा में ।
बह रहे हाय वे चीन रूस, रिपु के कृपाण की धारा में ।
दो काट बंध, ओ त्वरा करो, रिपु की सेना बढ़ती अपार ।
है विवश किन्तु सब विधि तयार ॥१२॥"

अभ्यागत का स्वागत अपार।

आये इस अवसर पर महान्, वे चीन देश के कर्णधार।
श्रीमती और श्रीमान च्याग, लेकर अपने उर का दुलार।
पर अपना घर तो रहा नही, वे गये शासको के घर पर।
हमको इसका था क्षोभ नही, धन अपना तो उर का आदर।
मिल सके न वे हमसे अबाध, हम विद्रोही थे शासन के।
नेहरू गाँधी ने दिये किन्तु उपहार जन-हृदय-आसन के।
दम्पति ने भी मित्रो से की भारत-स्वतत्रता की पुकार।

पर इसका क्या होता विचार ॥१३॥

था रूस चीन का पक्ष प्रबल।

उस साम्यवाद के अजय दुर्ग पर धधक रहा था प्रलयानल।
पर सजा रहे थे मित्र अभी दूसरे 'फ्रंट' को दल-बादल।
वह चीन विचारा सैतिस से लडता निप्पन से निस्सहाय।
उस समय विश्व-रक्षक रचते थे राष्ट्र-सघ का स्वॉग हाय।
भारत को व्यथित पडोसी से है रहा सदा ही संवेदन।
पर बदी भारत की सहायता-सवेदन तो सहरोदन।
था हमने भेजा 'अटल-मिशन' पर आज समस्या विकट प्रबल।

इसलिए मोक्ष को हम विह्वल ॥१४॥

कटुता की बढती विषम ज्वाल ।
रिपु आता जाता निकट किन्तु, शासन की निश्चिंतता विशाल ।
फडफड़ा पंख, निज चंचु मार पिंजरे से, पंछी था बिहाल ।
पड रहे शत्रु के बमगोले बंदी पर ओले के प्रहार ।
था धैर्य नहीं, थी शक्ति क्षीण, था विषम-वेदना का प्रसार ।
था रक्त खौलता, और नित्य जीवन का बढता तापमान ।
थी विकट धूप क्षण भर में पर ढकता गुबार से आसमान ।
थे झुलस रहे अब आशा के अवशेष मृदुलतर सुमन-माल ।
फुफकार रहा वेदना-व्याल ॥१५॥

आ गये क्रिप्स जलधर उदार ।
प्राची का प्रबल प्रभंजन लाया उड़ा एक घन दयाकार
जिसकी वाणी का सजल गान, था ज्ञात देश को हर प्रकार ।
ये साम्य-न्याय के मेघदूत, थे उज्ज्वल संवेदनाशील ।
गाधी नेहरू के मित्र, हमारे हितू और थे प्रगतिशील ।
इसलिए देश में बही शीघ्र नव आशा की शीतल बयार ।
मिट चला हृदय का असंतोष जो बना रहा दिल का गुबार ।
पर चर्चिल का दल बना हुआ था पट के पीछे सूत्रधार ।
निर्जल था यह घन का प्रसार ॥१६॥

उनकी उदारता का प्रकार।

हुंडी लाये थे एक आप जिसमें भविष्य का तिथि-विचार।
जब युद्ध-बाद भारतवासी अपना विधान करते तयार।
थे कई और प्रस्ताव देश के हो जावें बहु खण्ड खण्ड।
उसमें अबलों के रक्षक हों अँगरेज सैन्य बल से प्रचण्ड।
देशी राज्यों में सामन्तों का चले वही शासन कराल।
उनकी जनता को वाणी क अधिकार प्राप्ति की हो न चाल।
आश्चर्य क्रिप्स भी ले आये ऐसा मेघाडम्बर अपार।
जिसमें न तत्व जिसमें न सार ॥१७॥

कुछ कर मिटने की परम चाह।

पर जब जलती थी अखिल सृष्टि, नभ में गूँजा क दन-कराह।
तब अखिल सृष्टि की रक्षा को शिव ने पीकर विष की न आह।
अब नेहरू पीता गरल-घूँट, कर छल-बलके प्रति आँख बंद।
बस एक चाह जग पर न पड़े फासिस्तवाद का मरण-फंद।
जब जगत-मंच पर मृत्यु और जीवन का चलता हो अभिनय।
तब कौन मूक कायर केवल देखेगा बैठ मानकर भय?
यह बेचैनी, यह अकुलाहट, यह था नेहरू का हृदय-दाह।
पर मिलनी थी उनको न राह ॥१८॥

यह संधि-वार्ता का प्रसार ।

यद्यपि भविष्य में दीख रहा था केवल छल का अंधकार ।
पर आज देश को करना था, बस वर्तमान पर ही विचार ।
"भारत-रक्षा का भार कभी था, देश नहीं सकता सँभाल ।
इस हेतु सैन्य-पति के कर में रक्षित था भारत भाग्य-भाल ।
पर भारतीय जन के द्वारा चालित होता वह रण-विभाग ।
जिसमें कागज पेट्रोल और सेना-विनोद का कार्य-भाग ।
ये राष्ट्र-मंत्र पढ भर देंगे, सेना मे नव उत्साह-प्यार !
कैसा प्रवंचना-मय प्रचार !१६॥

अब खुला दया का पट-प्रकाश ।

राष्ट्रीय सभा ने कहा, "करो जनता में केवल सुविश्वास ।"
राष्ट्रीय सैन्य दल बने और गृहरक्षक दल का हो विकास,
बढ़ जाय सैन्यपति की सत्ता, पर नरनारी हो समाविष्ट ।
यह युद्ध बने जनता भर का जिससे रक्षा हो सके इष्ट ।
नूतन सदस्य हो जन प्रतिनिधि, हो सचिव सदृश सम्मानपूर्ण ।
की बडे प्रेम से बात किन्तु कर दिया शीघ्र सब भ्रम विचूर्ण ।
सपने से चौंके चले क्रिप्स, चर्चिल ने खींचा नीति-पाश ।
झूठे प्रचार की लिये आश ॥२०॥

चल पडी पुनः कटुता-बयार ;

क्या क्रिप्स आगमन रहा एक शिशु बहलाने का नव प्रकार।
क्या कभी विदेशी कर सकते भारत-रक्षा सर्वस्व हार ?
हम साच रहे त्यों किया नये इरविन ने काग्रेस पर प्रहार।
फिर दिया क्रिप्स ने गाधी को वार्ता-विभग-उपहार प्यार।
यह भारत का अपमान घोर, था निदनीय बिलकुल असह्य।
उपहार सभ्यता का उसकी, झूठा प्रचार ओ नहीं सह्य ;
अब वही देश मे अग्रेजों के प्रति कटुता की घृणा-धार।
गाँधी फैलाता यदपि प्यार ॥२१॥

कितना भीषण वह जाति-भेद !

बरमा जापानी हाथों मे आया इसका अति हमे खेद।
अंग्रेजी शासन टूट गया अफसर भागे पहले सफेद।
जनता टूटी असहाय हाय, उसकी रक्षा का क्या साधन ?
पथ सरल करे वह गोरो के पावन, चरणों का आराधन।
काले जगल में काँटों पर खूनों से लथपथ चलें लटें।
बीमार पडे या मरे क्षुधित, उनके शव से सड सड़क पटे।
दासो को जीवन-सुख सुविधा से मोह ? महा-आश्चर्य खेद।
यह स्वार्थपूर्ण घातक विभेद ॥२२॥

मॉ बहनों पर यह अनाचार !

भारत गरीब, कुत्सित, गुलाम पावन सतीत्व का पर विचार–
रखता है प्राणो से पहले वह नीति धर्म औ' सदाचार।
पर इधर क्रूर जापानी से निज मॉ बहनों की रक्षा कर।
ये भारत-रक्षा-व्रती वीर (?) गोरे सैनिक मदिरा पीकर।
सडकों पर चलती, निस्सहाय अवलाओं पर करते प्रहार।
ये कुत्सित पशु ये अधम कीट, जिन पर लज्जा भय का न भार।
गॉधी प्रशात तिलमिला उठा, क्या कह दूॅ उसका व्यथा-भार।
यह पारतंत्र्य का सदुपहार ॥२३॥

रक्षा के ये निर्बल प्रयास।

नौकरशाही ने आवारों बेकारों को दे लोभ-आस।
था सिविक गार्ड दल खडा किया, जो चोरी का करता प्रयास।
प्रतिबंध लगे अब शहरो में, आच्छन्न हुआ तम से प्रकास।
अब बढी पुलिस की शक्ति चल पडा घूस-राज्य कर अट्टहास।
जनता तटस्थ कायरता को थी बुद्धिपूर्णता रही मान।
नौकरशाही के अफसर भी करते जपान का यशोगान॥
जापानी भाषा सीख रहे, ये राज्य-भक्त ये नय-निवास।
राष्ट्रीय सेवकों का विकास ॥२४॥

जीवन-नौका भी लिया छीन।

हूणों की प्रगति मिटाने को रूसी करते जोहर नवीन।
रिपु को न शक्ति मिल जाय अतः करते सब साधन अग्निलीन।
वर्मा में त्यागी गोरों ने भागते समय सब किया क्षार।
जनता के धन, जन-जीवन पर भागे करके भीषण प्रहार।
भय था न कहीं वे जापानी नदियों से कर दें दुरभियान।
बंगाल प्रान्त पर इसीलिये रक्षा-प्रयत्न होता महान्।
व्यापार और कृषि के जनता के हाथ पैर ले लिये छीन।
हम धार-मध्य नौका-विहीन ॥२५॥

परवशता का बंधन कराल।

अमरीका और विलायत से आई रक्षक सेना विशाल।
देना था उनको शरण स्थल, खोकर भी अपनी जानमाल।
घंटे-भर का अवकाश नहीं, आज्ञा— 'घर अपना छोड़ चलो।
आँधी पानी के पावस में निज घर से नाता तोड़ चलो।''
'भारतवासी तो सन्यासी तरु के नीचे रहते आये।
इनके बीवी बच्चे समोद सब भूख व्यथा सहते आये।
कैसा मुआवजा जब रक्षा-सेना रहती सह व्यथा-ज्वाल?
जो माँगे उसको दो निकाल ॥२६॥

गाँधी की आत्मा की पुकार।

गाँधी के सागर-उर-मंथन से निकली पावन सुधाधार।
यह थी नवीन, थी तत्व मात्र, इसलिए विश्व-विस्मित अपार।
"जब तक न हटेगा, ब्रिटिश राज्य जनता में होगा मलिन रोष।
विश्वास न मित्रो की जय में, अपनी रक्षा का भी न होश।
हिन्दू मुस्लिम का वीर भाव, भड़केगा आलस-स्वार्थ लोभ।
तब तक न त्याग उत्साह शौर्य फैलेगा केवल कुटिल-क्षोभ।
जनता के नैतिक अधःपतन का होता जायेगा प्रसार।
ऐसे संकट में दुर्निवार ॥२७॥

उनके मानस का बढ़ा ज्वार।

"जनतन्त्रवाद के महादर्श गोरों पर भारत का उधार।
उसकी स्वतंत्रता छीन उसे बंदी रखते है साधिकार।
यह एक पाप अक्षम्य इसे, कर दें तुरत वे दूर आज।
रख दें समस्त जग के सम्मुख, निज न्याय सत्य का स्पष्ट साज।
कांग्रेस को लेनी शक्ति नहीं, वह तो जनता की सुसंपत्ति।
श्री जिन्ना को दे चले जॉय इसमें न हमे कुछ भी विपत्ति।
इसमें न रोष इसमें न मान, यह मानवता की है पुकार।
तज दें सत्ता का मोह-भार ॥"२८॥

साम्राज्यवाद-मद त्याग त्याग ।

परतन्त्र देश के मृत शव को मत ढोओ जाओ शीघ्र त्याग ।
स्वाधीन करो, तो देखो तो भारत उठ पड़ता अभी जाग ।
फिर कैसे जर्मन जापानी, कैसा उनका ताण्डव नर्तन ।
चालीस कोटि के अग अंग से होगा विकट प्रलय-वर्षण ।
सेना लेकर निज अस्त्र, शस्त्र लेकर जनता निज अहिंसास्त्र ।
लेकर स्वतंत्रता का प्रकाश रिपु को हम कर देंगे परास्त ।
पर लो विचार ओ मित्र, अभी शासन-निद्रा से जाग जाग ।
पड़ रही जगत पर अनय-आग ॥"२६॥

राजाजी के अनुपम विचार ।

उनकी अपूर्व प्रतिभा प्रेरित नव राजनीति का था प्रसार ।
था देश-भावना के विरुद्ध पर एकाकी निश्चल विचार ।
जिन्ना को पाकिस्तान शीघ्र दो जैसे उर का प्रेमदान ।
फिर बना राष्ट्र सरकार एक दे दें, स्वदेश को अभय-दान ।
उन वीर धीर कम्युनिस्टों को हो चुका युद्ध था लोक-युद्ध ।
इसलिए शुद्ध सहयोग नीति थी, विना शर्त, थी शुद्ध-बुद्ध ।
स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बापू के सब यत्न लीग पर धुंवाधार ।
षड्यन्त्र-पूर्ण भीषण प्रहार ॥३०॥

'भारत छोड़ो' का महामंत्र ।

पर सुन व्यथित बेचैन देश जग पड़ा बने जिससे स्वतंत्र ।
वह उदासीनता मिटी बढ़ा संकल्प तेज साहस स्वतंत्र ।
गाधी ने फूंका पाचजन्य 'छोडो भारत' का हुआ घोष ।
"इस न्याय मॉग पर भ्रान्तिपूर्ण कुविचार हो न या द्रोह रोष ।
"तुम चीन देश या भारत की रक्षा को सेना रख सकते ।
"भारत की सद्भावना और सहयोग स्वाद तब चख सकते ।
"करके स्वतंत्र भारत से मैत्री और सधि का सफल तत्र ।
कर सकते दुनिया को स्वतंत्र ॥" ३१॥

इस न्याय-मॉग पर क्षोभ-ज्वाल ।

यह प्रजातन्त्र के दंभ-मेघ को न्याय-वायु अति ही कराल ।
सब 'मित्र' रोष से भस्मसात्, उनके लोचन लोहित विशाल ।
"हैं भारतीय वे शत्रु आज. जो नहीं हमारे साथ साथ ।"
श्री क्रिप्स महोदय बोल उठे, "गॉधी तो रिपु के चले साथ ।"
जापान-समर्थक हैं गाधी जन-तन्त्र विमर्दक है गाधी ।
हम मित्र-राष्ट्र जग के हितार्थ रोकेंगे यह भीषण ऑधी ।"
गालिया मिलीं औ' घृणादान पर काग्रेस का था अचल भाल ।
उन्नत महान् गिरि-सा विशाल ॥३२॥

निन्दा के सच्चे स्वर निर्बल ।

साम्राज्यवाद के स्वार्थपूर्ण झूठे प्रचार का लख कौशल ।
सोचा कि विश्व मे विजयी है बस अनाचार केवल छलबल ।
गाँधी को दभी कहा गया, विश्वासहीन, सिद्धातहीन ।
"जग की स्वतत्रता का द्रोही, मुट्ठी भर का नेता मलीन ।"
गाँधी ने व्यापक तर्क किया, लिख बोल किया भ्रम सभी चूर्ण ।
पर स्वय अचल बोला सहास. दो शब्द मधुर मुसुकान-पूर्ण ।
'नानृत जयति सत्य मा भैः' सदेह बना हुंकार-प्रबल ।
निर्भय त्यागी का अगणित बल ॥२३॥

बढ गया देश का तापमान ।

गाँधी ने चाहा सत्य-सूर्य चमके निर्मल हो आसमान ।
साम्राज्यवाद औदार्यपूर्ण दे दे भारत को न्यायदान ।
पर उधर गर्व के मेघ घिरे, धमकी का ले गडगड गर्जन ।
पीडित जनता की आहों की आँधी करती हरहर नर्जन ।
कटुता अपमानों अन्यायो का जहर हवा मे मिला आज ।
बिजली विनाश की चमक उठी, उठ पडा राष्ट्र सज प्रलय-साज ।
पर इधर अहिसा के जादू मे रहा नियन्त्रित राष्ट्र-ज्ञान ।
शासन का बढता था गुमान ॥२४॥

शासन के कौशल का प्रकार।

गाँधी पवित्रतर सोच रहे वे पायेंगे अब भी दुलार।
पर इधर कुटिलतर शासन तो सोता न रहा कर पग पसार।
गत बीस दिनो में आजादी का युद्ध कुचलने का कौशल।
सेना पुलीस को मिला पूर्ण आदेश और उपदेश प्रबल।
उनकी नस नस में भरा गया चिर अमर-वीरता का प्रभाव।
कुछ टुकडों पर निज देश बेचने वालों का क्या था अभाव?
जो मधुर 'मुरब्बे' था पेंशन या पुरस्कार मे था विहार।
वैसा न देश का रहा प्यार ॥३५॥

जनता को पर सन्देश नहीं।

जनता के उर का पारा भी अब चढ़ा किन्तु निर्देश नहीं।
अकुला भुजग उठ खडा हुआ पर नियत मार्ग आदेश नहीं।
राजेन्द्र आदि थे सिन्धु तीर, भय त्याग कूदने को तयार।
चाहे डूबें या पार जायँ इसका न किसी को था विचार।
प्रतिमा ने भी छात्राओं में भर राजनीति का विशद ज्ञान।
धीरे धीरे तैयार किया उन दुर्गाओं का स्वाभिमान।
काशी मे इधर सुदामा भी तैयार, कार्यक्रम पेश नही।
कुछ निर्धारित संदेश नहीं ॥३६॥

द्वन्द्व

सर्ग १३

सावन के उस काले नभ पर, बादल का नर्तन होता था।
तरुणाई के दीवानों का फिर प्रत्यावर्तन होता था।
वे घूम घूम घिर झूम झूम गड गड़ गर्जन कर जाते थे।
चपला की अभिमानी कटार, वे छिपा छिपा चमकाते थे ॥१॥

मारुत जलकरण का भार लिये कुछ मदमाता-सा डोल रहा।
युवकों पर छींटे मार कभी वह व्यंग्य बाण ले बोल रहा।
"सागर के जल का शोषण कर घन उमड़ घुमड ललकार रहे।
जन-बल का सचय तुच्छ मान वे तुच्छ तुम्हें धिक्कार रहे ॥२॥"

ग्वालिया टैंक का वह विशाल, मैदान आज गभीर बना।
उस पर जन-बल का भार पडा, वह वीर बना रणधीर बना।
उसको मेघों के गर्जन की थी बिलकुल ही परवाह नहीं।
जिसमें गर्जन का रोष भरा उसमें वर्षण की चाह नहीं ॥३॥

उसका मस्तक था चमक रहा, पाकर अपना दिनकर गाँधी।
उसके अन्तर मे उमड रही विद्रोहमयी भीषण आँधी।
जिसके झोके से धूमतनय घन काई-सा फट जायेगा।
जिसके धक्के से सत्ता का टुकडा-टुकडा हो जायेगा ॥४॥

कुछ दूर खड़े चुपचाप महल, थे देख रहे जन-बल उमंग।
उनके उर को थी दहलाती, उठ उठ जय-घोषों की तरंग।
वातायन के रेशम के पट, मारुत से फडफड करते थे।
लोहे की छड से टकराकर, बेसुध अपना सिर धरते थे ॥५॥

था उधर पुलीसो का दल भी, जनबल की बाढ दबाने को ः
था तुला हुआ जनबल अब तो, शासन का गर्व मिटाने को।
जनबल की अमर जवानी का, दब सकता है अरमान नहीं।
इस पर चल सकती तोप नहीं, भाले तलवार कमान नहीं ॥६॥

टैंकों मशीनगन की जों जों, छर छर पर वह मुसुकाता है।
बम्मारों की घनघन भनभन, से कभी नहीं थर्राता है!
जनबल वह शक्ति इकाई की, जिस पर लूई का ताज गिरा।
सर कटा चार्ल्स अभिमानी का, जिस पर जारों का नाज गिरा ॥७॥

वह न्याय-धर्म की सेना है, जिससे महराजे भाग चले।
वैभव-विलास का राजमुकुट, घबरा थर्रा कर त्याग चले।
वह सद्विवेक की मेधा है, जिस पर पूँजीवादी छलबल।
विषगैस और बम व्यर्थ हुए, टूटा टुकडे हो नाजी दल ॥८॥

छन्द

आधुनिक यत्र की अश्वशक्ति, अथवा सामतों का गजबल ।
निर्जीव और निर्बल निरीह, जब उठता एकनिष्ठ जनबल ।
आती जाती सब सडकों से उत्कण्ठित हो जनता अपार ।
चढ चला वहाँ पर एकत्रित जनता सागर का महाज्वार ॥९॥

विद्युत दीपो से जगा हुआ, था मध्य भाग में रुचिर मच ।
रवि शशि तारों से चमक रहे, आसीन वहाँ पर राष्ट्र-पंच ।
जनता के उत्सुक लोचन-मन थे देख रहे उन वीरों को ।
था देश-भाग्य भी देख रहा उन त्यागवीर रणधीरों को ॥१०॥

थे खडे मंच पर शेर-सदृश पहने रेशम की शेरवानी ।
उनकी दाढी की शान सदा नौकरशाही ने थी जानी ।
उनका गोरा स्वर्णिल प्रताप विद्युत्प्रकाश में निखर रहा ।
उन मौलाना अब्बुल कलाम का तेज भुवन में बिखर रहा ॥११॥

था खडा उन्हीं के दायें पर वह अर्द्धनग्न वह अतिमानव ।
जिसके विशाल खल्वाट भाल से निकल रहीं किरणें अभिनव ।
वह सत्य अहिंसा का प्रतीक, वह ध्यानमग्न था संत शात ।
उसके पीछे नेहरू पटेल, थे दो बिजली के खण्ड कांत ॥१२॥

गाँधी के अधरों पर उँगली जनता पर जादू-मत्र चला ।
फिर मधुर-कण्ठ दो बहनों के मुख से वह गीत स्वतंत्र चला ।

सुजला सुफला मलयज शीतला
शस्य श्यामलाम् मातरम् । वन्दे मातरम् ।

शुभ्र ज्योत्स्ना पुलकित यामिनीं
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीं
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीं
सुखदा वरदा मातरम् । वन्दे मातरम् ॥१३॥

थी विजडित जनता ध्यानमग्न थी जननी की सुस्मृति अपार ।
हो पडा परुष सप्तम स्वर में बहनों की वाणी का सितार ।
त्रिंश कोटि कण्ठ कलकल निनाद कराले ।
द्वित्रिंश कोटि भुजैधृ॔त खर करवाले ।
के बोले माँ तुमि अबले ?
बहुबल धारिणीं नमामि तारिणीं ।
रिपुदल वारिणीं मातरम् । वन्दे मातरम् ॥१४॥

फड़क उठी बाहें जनता की आँखो में थे शोले ।
हृदय तरंगित किन्तु तभी आजाद राष्ट्रपति बोले ।
उनके स्वर में मित्रराष्ट्र से बोली माँ की वाणी ।
धीर, वीर, गभीर, प्रपीड़ित किन्तु शांत कल्याणी ॥१५॥

"आओ आओ साथ चलें, हम नाजीवाद मिटाने ।
एक लक्ष्य है खड़े हुए हम सैनिकवाद ढहाने ।
आओ किन्तु सखा सहचर से छोड गर्व का बाना ।
अभी स्वतंत्र हमें होने दो करो न व्यर्थ बहाना ॥१६॥

देखो क्या भारत-रक्षा के लिए अमिट आजादी।
समझो इसके विना न होगी दुष्टों की बरबादी।
भारत में धधकेगी तब तो वह स्वतंत्रता ज्वाला।
जिसमें प्राण-मोह छोडेगा युवक वर्ग मतवाला।
विजय घोप से गूँज उठेगा जग का कोना कोना।
प्रजातन्त्र के लिए मरेंगे, पर न समय अब खोना ॥१७॥

उस भाषण-धारा में वहती, जनता जग को ललकार रही।
वह राष्ट्र-रोप की रणभेरी, फुफकार रही हुंकार रही।
पर उसी समय मध्यस्थ-मंच, पर हुआ दिव्य आलोक खड़ा।
भावो की आँधी में बढ़ती, जनता पर शान्ति-प्रकाश पड़ा ॥१८॥

मैदान वृहत् वह गूँज उठा, गाँधी का जयजयकार हुआ।
पीड़ित मानवता के त्राता, का जन-स्वर से सत्कार हुआ।
अधरो पर गई तर्जनी वह जनता थी उसकी माया में।
क्या तेज छिपा क्या शक्ति छिपी ढाई हड्डी की काया में ॥१९॥

बोला, "लिनलिथगो तो अपने हैं सखा सनेही अतरंग।
मैदाम और श्री च्यागशेक पर हैं अपना अनुराग-रंग।
श्री रूजवेल्ट हैं वडे भले जग की स्वतत्रता के प्रेमी।
इँगलैण्ड देश की जनता भी, चार्ली की भाँति नीति-नेमी ॥२०॥

"हम उनसे सविनय माँग रहे, अपनी माता की आजादी।
जिससे विजयी हो न्याय स्वयं अन्याय-दमन की बरबादी।
पर नहीं प्रतीक्षा का अवसर इसमें उनकी अच्छाई है।
यदि वे न हमें आजाद करें तो अपनी छिड़ी लड़ाई है ॥२१॥

"पर मत मेरा अनुसरण करो, केवल इस हेतु कि फैशन है।
इस रण से बिलकुल दूर रहो, यदि दिल में भय का कंपन है।
मत आओ मेरे साथ अगर है संप्रदाय की छूत तुम्हे।
मत नष्ट करो रण लगा अगर, जापान-प्रेम का भूत तुम्हें ॥२२॥

"यदि शक्ति मिलेगी तो केवल, वह नही तुम्हारी ही होगी।
यदि भक्ति अहिंसा में तुमको, तो विजय तुम्हारी ही होगी।"
फिर नेहरू उठा भभकता-सा, जलते पावक का अंगारा।
वह विश्व-राष्ट्र को बता रहा था भारत छोड़ो का नारा ॥२३॥

बोला एशिया की महिमा में भारत का उज्ज्वल यश गाया।
फासिस्तवाद के निशिचर पर वाणी का अनल-प्रलय ढाया।
फिर बता दिया किस भाँति देश आजाद विश्व-रक्षक होगा।
फासिस्तवाद-तक्षक होगा साम्राज्यवाद-भक्षक होगा ॥२४॥

फिर बोल उठा नौकरशाही की जर्जर चरमर काया पर।
लड़खड़ा रही जो टूट रही पर पड़ी अनय की माया पर।
आदेश दिया, "अब निकल जाय भारत से अंगरेजी सत्ता।
जूतो की ठोकर से अथवा टूटेगी उसकी बलवत्ता" ॥२५॥

पर नहीं अभी सन्तोष हुआ निकले न भाव माँ के उर के।
उसने पटेल को खड़ा किया जिसके सक्रोध अधर फड़के।
"जो समझ रहे इस नारे को जापानी रिपु का आवाहन।
उनकी आँखों पर परदा है, हम उन क्रूरों पर प्रलय पवन ॥२६॥

"पर अगरेजो को भी न आज भ्रम का कोई कारण होगा।
छोड़ें न देश, भारत म तो जनता का भीषण रण होगा।"
पहले दिन नेता लागों ने अपना पावन सदेश दिया।
दूसरे दिवस को जनता ने सादर उनका आदेश लिया ॥२७॥

वे लोक-युद्ध के चारणगण अपनी प्रतिभा उच्चार उठे।
बोले अशरफ बोले नवीन कुछ सशय के अविचार उठे।
राजेन्द्र बम्बई गये हुए थे बनकर छात्रों के प्रतिनिधि।
देखी सारी उल्लास भरी जन-जीवन के रण की गतिविधि ॥२८॥

संघर्ष

सर्ग १४

सोई थी रजनी श्यामा, पहने निज काली सारी।
कुछ व्यथित श्रान्त सी, व्याकुल वह पडी हुई थी नारी।
उस बडे नगर का कलरव निशि के अचल मे सोया।
जनता का सारा जीवन लगता था खोया खोया ॥१॥

कुछ ऊँघ रहे थे बेसुध निद्रा में नभ के तारे।
सडकों पर ऊँघ रहे थे बिजली के दीपक सारे।
जनता सपनो मे लेती आवेशमयी अँगराई।
मानस की व्याकुल लहरें सपनो मे आ लहराई ॥२॥

अब अंधकार का परदा कुछ हल्का सा हो आया।
हल्के पैरों से आकर, चिन्ता ने मुझे जगाया।
मैंने कुछ होश सँभाला जा टेलीफोन उठाया।
नगरी की साँसो के इन तारो का हुआ सफाया ॥३॥

सोया राजेन्द्र पडा था, उसको भी शीघ्र जगाया।
बिरला हाउस को दौडा, कुछ शंकित कुछ घबराया।
सडकें बेहोश पडी थीं, पर कुछ जीवन का स्वर था।
कुछ पथिक उधर चलते थे, जिस ओर राष्ट्र नटवर था ॥४॥

बिरला हाउस में अब तो हो गया प्रकाश सबेरा।
उठ पडे हमारे बापू, जनता ने प्रभु को टेरा।
'यं शैवा समुपासते इति' कह कर कोमल स्वर में।
'बिस्मिल्लाह अल रहमाने रहीम' स्वर गूँजा अम्बर में ॥५॥

'वैष्णव जन ते तेणे कहिये' से जग-निद्रा भागी।
इसी समय दो, पुलिस लारियाँ आईं हरि अनुरागी।
फाटक तो बंद अभी था, गुरखे से खोई ताली।
गोरों को गाँधी-दर्शन की रही बडी बेहाली ॥६॥

वे सफल चोर दीवालों को कूद गये गृह-भीतर।
था आज राष्ट्र-धन हरने का उनके निश्चय का स्वर।
वारंट देख मुसुकाया, वह लेकर चर्खा गीता।
कलमा मजीद को लेकर, वह भवन कर गया रीता ॥७॥

सोते से जगा जवाहर, चट पुलिस कार में आया।
सरदार और मौलाना को पहले बैठा पाया।
राष्ट्रीय सचिव-मण्डल थे अब शासन के बंधन में।
यह बात प्रलय भरती थी, घन के भीषण गर्जन में ॥८॥

सोचा था चोरी चोरी, यह धन ले कहीं छिपायें।
फिर सरल अबल जनता को बल से भयभीत बनायें।
पहुँचे स्टेशन पर देखा, जनता का भीषण सागर।
जय इन्कलाब नारो से जो भेद रहा नभ-अंतर ॥९॥

जनता-समक्ष से इनको इस भाँति छीन ले जाना।
दुस्साहसमय डाका था यह ग़जब जुल्म था ढाना।
फिर मिल न सका यह परिचय, वे कहाँ गये ले जाये।
था हृदय क्रोध-उद्वेलित आँखो मे शोले छाये ॥१०॥

दाँतो पर दाँत जडे थे, मुट्ठियाँ बँधी जनता की।
हो गया तुमुल कोलाहल, अब शाति जली जनता की।
पर किंकर्तव्य-विमूढा हो रही भीर जनता की।
अब बुद्धि-विवेक अहिसा थी उडी धीर जनता की ॥११॥

था उधर ग्वालिया में भी कौमी सेवा का वंदन।
अभियान-प्रदर्शन कौमी झण्डे का नव अभिनंदन।
बहनें आ खडी हुई थीं, पहने वासंती सारी।
औ' सैनिक युवक खडे थे थी जौहर की तैयारी ॥१२॥

उत्सुक अपार जनता का था लगा, यहाँ पर मेला।
उनको न ज्ञात रत्नों की, चोरी की बीती वेला।
अरुणा रक्तारुणा नयनों से ले दुर्गा की छाया।
जनता को बता रही थी, रिपु के विनाश की माया ॥१३॥

त्यों ही गुरूर का मारा गोरा चिल्लाता आया।
है यहाँ पुलिस का कब्जा लो हटा भीड की माया।
कुछ मिनट नहीं बीते थे, आँसू की गैस उडाया।
भू पर पड जाओ त्यों ही जनता को गया सुनाया ॥१४॥

जब अस्त्र गया यह खाली पुलिसो ने लट्ठ उठाया।
उस शांत धीर जनता के सर पर कुछ हाथ जमाया।
बहनो को गया घसीटा, बालक-बूढों को पीटा।
औचित्य दमन का यह था, था एक वहाँ पर ईंटा ॥१५॥

जनता की शांति-अहिंसा छिप गई दमन के वन में।
अब भड़की उसकी ज्वाला लग गई शीघ्र जन जन में।
वह वृद्ध नहीं था उनके पावक को शांत बनाता।
नेता दल वहाँ नहीं था जो क्षोभ नियंत्रित पाता ॥१६॥

मृदुला के मृदु अंगो पर लाठी की मृदुल (?) तरंगें।
जनता के उर में भरतीं भीषण प्रतिकार उमंगें।
इस कायर हमले पर थी उठ रही घृणा की आँधी।
मुसुकान नियंत्रित करता, वह यहाँ नहीं था गाँधी ॥१७॥

"होगी हडताल शहर में अब काम नहीं कुछ होगा।
जनता के जीवन बंदी तो जीवन का क्या होगा?"
क्षण भर में गूँज गया यह; बिजली-गति से संदेशा।
पर ट्राम और बस वालों को हुआ नहीं अंदेशा ॥१८॥

कुछ स्वार्थ-पले भय खाये, कुछ थे अंधे अभिमानी ।
जनता के उर की ज्वाला की, शक्ति नही पहचानी ।
उसके सीने पर होती, शासन की हड हड़ भारी ।
बस वालो की खड़ खड़ को, वह सह न सकी वेचारी ॥१६॥

कर विनय कहा जब उनसे, सहयोग कीजिये भाई ।
साहब लोगों के दफ़्तर जाने, की दिये दुहाई ।
फिर फौज पुलिस पहुँचाने, का लिया उन्होने ठेका ।
इस शात प्रदर्शन के भी, पथ को घड घड कर छेंका ॥२०॥

जनता के उर की आगी, अब धधक उठी वेसीमा ।
अब लगा गगन भी जलने, रवि की ज्वाला से भीमा ।
जल उठा कायरों का भय, साहव की टोपी टाई ।
अब ट्राम और वस वालो, की भी शामत वन आई ॥२१॥

उन अभिमानी ट्रामों की जल रही वसों की होली ।
तारों के खंभे उखड़े चल पडी पुलिस की गोली ।
चाहती पुलिस थी पहले, जनता को क्षुब्ध वनाना ।
गद्दार ट्राम वालों ने छेडा इसलिए तराना ॥२२॥

जनता का ख़ून हुआ था, अपमान हुआ था भारी ।
यह घृणित गुलामी करती थी इस जीवन को भारी ।
इसलिए वढे चलते थे सीने पर खाते गोली ।
लाशों पर लाश बिछाते, उनको थी मौत ठिठोली ॥२३॥

दुधमुँहे सरल बच्चे भी गिरते थे गोली खाकर।
हँसते हँसते मरते थे, माता का दूध पटाकर।
दब सकी दमन के घी से जब नहीं रोष की ज्वाला।
तब हत्यारे शासन ने अपना ब्रह्मास्त्र निकाला ॥२४॥

जो बन्द घरों में बूढे निर्बल बालक बालायें।
अब छोड क्षुब्ध जनता को उन पर जा अस्त्र चलायें।
गाँधी की जय जो बोले, वे बालक नन्हें भोले।
इन फौज पुलिस वालों की किर्चों पर चढ कर डोले ॥२५॥

पर अभी दमन का पहला अध्याय खुला था उनका।
आयर के वीर जनों को परिचय जिनकी पशुता का।
जल उठी पटेल पुरी में भी अभी दमन की ज्वाला।
चिन्ता न उन्हें भी पहने, यदि पुलिस मुण्ड की माला ॥२६॥

राजेन्द्र कुँवर ने देखा, आँखो से ताण्डव नर्तन।
बच गये स्वयं थे यद्यपि कर रहा काल-आवर्तन।
उनको प्रयाग में जाकर काँग्रेस सन्देश सुनाना।
छात्रों की नई रगों में था शोणित नया बहाना ॥२७॥

ऐय्यर, केस्कर औ लोहिया, अरुणा अच्युत पटवर्धन।
बच रहे पुलिस के पजे से क्रांतिशील ने ,। जन।
बापू जी तो हफ्तों में, अपना संघर्ष चलाते।
श्री लिनलिथगो से मिलते, तब निज आदेश चलाते ॥२८॥

अब कुछ विमूढ जनता को, संदेश इन्हें था देना।
अब स्वयंप्रभूत-प्रभा को कुछ हविष इन्हें था देना।
राजेन्द्र कुँवर को इनमे मिल गया क्रान्ति-संदेशा।
उसमें था यदपि अहिंसा का, यथा शक्ति संदेशा ॥२६॥

थे ट्रेन-मार्ग अब कटते, छाई आँधी तूफानी।
पा गये ट्रेन वह अंतिम, ले चले व्यथा दीवानी।
हर स्टेशन पर सुनते थे, वे इन्कलाव का नारा।
फैली जाती जनता मे अब अमर क्रान्ति की धारा ॥३०॥

हर स्टेशन पर खुफिया जन कुछ कुछ शिकार पाजाते।
कुछ कुछ राष्ट्रीय सिपाही, चंगुल में उनके आते।
राजेन्द्र कुँवर बैठे थे सेकण्ड क्लास में जाकर।
पाकिस्तानी टोपी से अपना नव साज सजाकर ॥३१॥

छिउँकी तक आते आते सारे प्रयाग के साथी।
श्यामल कंकण अपनाये, उनकी भी खूब प्रभा थी।
अब तक तो सुलग चुकी थी, छातों में भीषण ज्वाला।
पर अभी शांति पहने थी, उज्वल विवेक की माला ॥३२॥

प्रयाण

सर्ग १५

प्रतिमा निज अध्ययन कक्ष मे, बैठी पढ इतिहास रही।
हरित धरा पर छाया छाई, शीतल मधुर बयार बही।
विगत निशा में चिन्ताओं ने, उसके मन को घेरा था।
उसके उर में कुछ धूमिल सी, शंकाओ का डेरा था ॥१॥

पुरवाई ने उसके तन को, सहला सहला प्यार किया।
व्यथित श्रात प्रतिमा रानी, को स्वप्नों का उपहार दिया।
रुकते रुकते श्रात हो चली, सरल चेतना की पॉखें।
सपनो की दुनिया में खोई, उनकी रतनारी ऑखे ॥२॥

छाई एक घनी सी छाया, उनके सपनों के जग में।
हुआ निविड तम उल्का टूटे, भय व्यापा हर रग-रग मे।
नभ में बही खून की धारा, उड़ी हड्डियॉ मुण्ड गिरे।
हुआ तुमुल कोलाहल सहसा, प्रतिमा के दृग जाग पड़े ॥३॥

वह अधीर वेवस व्याकुल थी, तनु-लतिका थी काँप रही।
मानो अप्रत्यक्ष भीषिका, उसका साहस माप रही।
साहस कर कुछ स्वस्थ हुई थी, नीचे देख पडा राकेश।
बाँट रहा था वह नेताओ के, बन्दीपन का सन्देश ॥४॥

जब तक मन्त्र न मिले हृदय में, तब तक धैर्य-प्रकाश नहीं।
नहीं मिले आदेश राष्ट्र का, तब तक कार्य-विकास नही।
प्रतिमा ने उस संध्या को ही, छत्राओं की परिषद कर।
दिया उन्हे लक्ष्मीबाई का, अमर क्रान्ति-सन्देश प्रखर ॥५॥

दस अगस्त को संघ हाल मे, छात्रों का ससार जुडा।
नवयुवको के क्षुब्ध दृगो मे, आज प्रलय का ज्वार बढा।
"हम स्वतन्त्रता के प्रहरी हैं, राष्ट्र-समर के सेनानी।
अब निज जीवन के कृपाण का, हम लहरा देंगे पानी ॥६॥"

"थर्रा देंगे इस शासन को, घहर गिरेगा वज्र प्रबल।
एक चोट से ढह जायेगा इनके छल का दुर्ग स्थल।
दी है हमने बहुत परीक्षा, अब की अग्नि-परीक्षा है।
अब विकराल काल से भिडकर, जय पाने की दीक्षा है ॥७॥

"जिनके उर में वज्र भरा हो, जो जलते अंगारे हों।
जिनको जननी की लज्जा हो, वे सब साथ हमारे हों।
पब्लिक सर्विस इम्तहान से, डिप्टीपन का प्यार जिन्हें।
दूर रहें वे, जल जायेंगे, सह्य न रण-संहार उन्हें ॥८॥"

इन्कलाब के जयनारों से, छात्रों ने ललकार किया।
फटा गगन अब मानो ज्यो ही सिहो ने हुंकार किया।
निश्चय हुआ छात्र दलबल का कल-भीषण अभिनय होगा।
सघ भवन से कल जुलूस का, बल-प्रयाण निश्चय होगा॥६॥

जब ग्यारह को संघ भवन पर, छात्रों का दल उमड पड़ा।
तभी गगन में गड गड करता, मेघो का दल घुमड पडा।
एक मील लम्बा जुलूस, करता जब जय जय नाद बढा।
उसके उष्ण रक्त को शीतल, करने को घन बरस पडा॥१०॥

छुर छुर प्रखर धार में भीषण बिजली भी चमकाता सा।
गर्जन तर्जन से वर्जन कर, उनको कुछ धमकाता सा।
घन की तरल उमंगों से भी, भीषण अनल तरंग लिये।
बढा जा रहा छात्र-सैन्य-दल, आजादी का रग लिये॥११॥

हुआ नगर के मध्य केन्द्र मे, छात्रों का केहरि गर्जन।
शंकित सी कायर जनता के, उर में भी बल का नर्तन।
शासन ने अनेक स्थानो पर, आज मार्ग अवरोध किया।
लाठी चला तोप से धमका, फिर अभियान विरोध किया॥१२॥

इसीलिए उन हटी जवानों ने कल का आदेश दिया।
शात जुलूस कचहरी तक हो, यह निश्चय सादेश दिया।
था दोपहर सूर्य बदली से निकला उन्हें निरखने को।
माता के लालों की उज्ज्वल भक्ति-प्रभा परखने को॥१३॥

अखिल नगर के छात्र उमड कर, आज इकट्ठे हुए यहाँ।
बना व्यूह के दल में उनका दो पथ पर अभियान रहा।
प्रतिमा कान्ति प्रभा शशिमाला, जुहरा श्यामा और कला।
आज रूप-कोमल बहनो का, क्रान्ति-ज्वाल-मय वर्ग चला ॥१४॥

लेकर अमर तिरंगा झंडा, भारत माँ की कन्यायें।
चली झूमती सिंह-वाहिनी, ये स्वदेश की धन्यायें।
उनके पीछे अनुशासन मय, युवक वर्ग रणमत्त चला।
जब बहनें नेतृत्व कर रहीं, तो कैसा भय-भेद भला ?१५॥

श्री राजेन्द्र बगल मे आगे आगे चलते जाते थे।
और प्रखर उन्मत्त कंठ से यह रणगीत सुनाते थे।

बढे चलो बढे चलो जवानो तुम बढे चलो।
है आर्त माँ पुकारती, तुम्हारा पथ निहारती,
पडी है लौहश्रृंखला, अचल व' प्राण हारती।'
विलम्ब का समय नही अभीअभय बढे चलो ॥ बढे चलो ॥

य' पंथ मे पहाड जो, य' सिंह की दहाड जो।
य' खड्ड की करार जो, तरंगिनी की धार जो।
तुम्हारे विघ्न हैं नही, अनय-प्रलय बढे चलो ॥ बढे चलो ॥

प्रभा-मयी स्वतंत्रता तुम्हे वहाँ पुकारती।
वही कराल मृत्यु भी, खडी खडी निहारती।
अचल अनल है जल रहा प्रलय के घन बढे चलो ॥ बढे चलो० ॥

ये तोप टैंक यंत्रगन, ये शत्रुओ के सैन्य बल।
तुम्हारे तेज के लिए, ये मोम से बने महल।
तुम्हारे प्रण के वायु के ये मेघ-दल बढे चलो ॥बढे चलो०॥

तुम्हारा संघ-दल बढा, तुम्हारा वीर-ध्वज बढा।
लो मातृ-बंध कट गये, तुम्हारे जय का ध्वज बढा।
माँ अपना कर पसार के, बुला रही बढे चलो ॥बढे चलो०॥१६॥

× × ×

आया न्यायालय समक्ष था पोल न्याय की खुलती थी।
इन नभ-भेदी जयनारों से, भित्ति शक्ति की हिलती थी।
यदि भोले किसान ले जय-स्वर, निज गांवों में जायेंगें।
तो अपने नव क्रान्ति-समर से शासन चूर्ण बनायेंगे ॥१७॥

विकट चुनौती उनकी आँखों से, यह शीघ्र छिपानी थी।
या अपने पशु क्रूर करों की शक्ति उन्हें दिखलानी थी।
बढते बढते देखा दायें, बायें पथ अवरुद्ध हुआ।
आगे भी बन्दूक किर्च से, शासन का स्वर क्रुद्ध हुआ ॥१८॥

हाल्ट हुआ पर युवक वीर तो अब भी बढते जाते थे।
दुर्गा दल के साथ साथ, वे रिपु पर चढते जाते थे।
आया वह अंग्रेज कलक्टर फायर का आदेश लिये।
दो सार्जेंण्टो ने अपने गन बहनो पर थे तान दिये ॥१९॥

बोले युवक निकल कर आगे, "अभी न वहनों की वेला।
"कायर शस्त्र-हीन वहनों पर, क्या यह तुमने रण खेला ?
खुले हुए हैं अब ये सीने, गोली खूब चला लो तुम।
हिंसक पशु, इस गरम खून से, अपनी प्यास बुझा लो तुम ॥२०॥

"याद रहे साम्राज्य तुम्हारा, कागज की नौका वनकर।
प्रलय-धार में बह जायेगा, साथ-साथ मे ये अनुचर।
और विश्व मे रह जायेगी, तेरी कुत्सित अनय-कथा।
आज शहीद युवक जो होंगे, उनकी होगी अमर कथा ॥२१॥

"पर जो घृणा-वेलि पनपेगी, उसमें नाश तुम्हारा है।
अब तो क्रान्ति-चिता सुलगेगी, गौरव क्षार तुम्हारा है।
उठा रहे हो सुप्त सिंह को, अपना यह भय दिखलाकर।
सोच रहे हो क्या कर लेंगे, गाधी के चेले आकर ॥२२॥

कहते कहते झंडा लेकर वह आगे वढता जाता।
अंग्रेजी सत्ता का पारा, पल पल पर चढता जाता।
जान विकट संघर्ष कुँवर ने, वहनों को भिजवाया था।
और युवक दल मरने मिटने, का प्रण करके आया था ॥२३॥

वीर पद्मधर को लख वढते, टामी ने मारी गोली।
गिरा वीर वह दे मस्तक पर, मातृ-भक्ति की नव रोली।
फिर पुलीस को मिला इशारा हुई गोलियों की वर्षा।
खड़ा रहा वह वीर छात्र दल, निश्चय अभय हिमालय सा ॥२४॥

लौट पड़े अब छात्र, पद्मधर उन्हे विजय उपहार मिला ।
मिली प्रबल प्रतिशोध-भावना, विद्रोही अधिकार मिला ।
फैली क्रान्ति शीघ्र नगरी मे, आज वीर बलिदान हुआ ।
कटे तार जल गई मोटरे, सरकारी घर क्षार हुआ ॥२५॥

चली गोलिया जगह जगह पर, नगर आज शमशान बना ।
जनता अब तक शात रही थी, पर अब प्रलय-वितान तना ।
इस प्रकार अत्याचारों ने, जनता को जब क्षुब्ध किया ।
नेता-हीन भीड़ को भीषण, प्रतिकारों पर लुब्ध किया ॥२६॥

यह न राष्ट्र-आदिष्ट क्रान्ति थी, दमन दर्प का था प्रतिकार ।
इसी प्रकार दमन से होता, शाति-व्यवस्था का सहार ।
विद्यालय पर किया पुलिस ने, कब्जा निज दल बल लेकर ।
बाध्य किया वे जाय गॉव में, अपना रोष-अनल लेकर ।
नजरबन्द हो गये आज ही उस जुलस के नेतृप्रवर ।
भेज दिया राजेन्द्र कुँवर को कारा मे फिर लारी पर ॥२७॥

प्रवाह

सर्ग १६

जो लगी आग थी शहरो मे, वह अब गॉवों की ओर चली।
छात्रो में धू-धू कर गरजी कृषको में होली खेल चली।
वे पिसे आ रहे थे अनेक वर्षो से क्या सुख साज उन्हे।
सम्पूर्ण त्याग के थे प्रतीक भारत माता की लाज उन्हे ॥१॥

गॉधी-सा प्रबल प्रतापी भी, जब आज जेल के भीतर है।
जब हिंसक पशु-सा निर्दय बन, शासन होता यों दुखकर है।
तो किस विलास का प्रेम उन्हें, किस वैभव के खोने का भय?
वे किस संकट से घबराते, उनको नवीन था कौन अनय ॥१२॥

राजेन्द्र कुँवर तो पहुँच गये थे अब तक कारा के भीतर।
अब प्रतिमा कुछ मित्रो के सँग आन्दोलन की थी प्राण प्रखर।
शुक्ला जी काशी से आये, संगठित कार्यविधि करनी थी।
राजेन्द्र संग योजना बना माता की पीडा हरनी थी ॥३॥

पर मिली वहाँ प्रतिमा रानी जो बनी आज रणचंडी थी।
जो देश-कार्य के लिए हठी थी, अमी सशक्त घमंडी थी।
राजेन्द्र कुँवर के द्वारा था प्रतिमा का परिचय मिला प्रथम।
इसलिए बने वे अतरग, उनकी प्रतिभा थी तीक्ष्ण परम ॥४॥

प्रतिमा नगरी में बैठी ही, बन रही कार्य का केन्द्र गुप्त।
साहित्य और सम्पर्क कार्यकर्ताओं को मिलता अगुप्त।
मजदूर सघ का रामू भी दाहिना अंग था बना हुआ।
उस अमर क्रान्ति की धारा मे जिसका कण कण था सना हुआ ॥५॥

पहले शुक्ला ने सेना का वह गृह मोर्चा मजबूत किया।
फिर गाँवों भिन्न प्रदेशों मे सेना-सगठन प्रभूत किया।
कुछ वामपक्षियों के द्वारा फैले थे जन में क्रान्ति भाव।
कुछ क्षुधा-वेदना ने डाला दीनों में नूतन क्रान्ति चाव ॥६॥

फिर धन्य एमरी ने भेजा जनता में क्रान्ति सँदेशा था।
बतलाया काग्रेस का जो कुछ भी क्रान्ति-युक्त संदेशा था॥
जनता का तो दृढ निश्चय था हडताल आदि होगी केवल।
पर कहा एमरी ने, "अब तो, यह शक्ति ग्रहण का यत्न प्रबल ॥७॥

"सडकें कट जायेंगी, थाने, तहसील आदि जल जायेंगे।
वे रेल तार को काट देश में, व्यापक क्रान्ति मचायेंगे।"
"जब इसीलिए नेता बंदी मंत्री जी यही बताते है।
तो उनकी ही आज्ञानुसार, जनता को कार्य सिखाते है ॥८॥

लुट गईं गुदामें सरकारी, जनता तो भूखो मरती थी।
लुट गये गाड़ियों मे कपड़े, वह तो नगी ही सडती थी।
गिर गईं गाड़ियाँ अन्यायी फौजें लेकर जो जाती थीं।
कट गईं लाइनें जो जनता का गला दवाती आती थीं ॥९॥

टूटे पुल और कुशासन को कुछ पंगु वनाकर ठीक हुए।
इन कार्यों में तो जनता ने, दिन-रात, रातादिन एक किये।
सीने पर हँस हँस गोली ली, अपने जीवन की होली ली।
मरनेवालो की टोली ले, मस्तक पर रक्तिम रोली ली ॥१०॥

शुक्ला ने पैरो में वाँधा, आँधी का यंत्र निराला था।
जो नदी लाँघ कर रात दिवस, काँटो पर चलने वाला था।
यह राष्ट्र-रोष वन क्रान्ति गया, होकर अनियंत्रित तूफानी।
इसकी धारा में बहा देश, था आग आग पानी पानी ॥११॥

काशी के छात्रो ने विहार मे, युक्तप्रान्त के पूरब से।
जो आग लगी दी थी प्रचण्ड, वह दवी न शासन वेढव से।
शुक्ला ने अद्भुत भेषो में अपनी बिजली से जल जलकर।
उत्तरी देश का भ्रमण किया संगठन किया पग पग चलकर ॥१२॥

× × ×

पंद्रह अगस्त को वलिया मे सौभाग्य उन्हें ले आया था।
वस यहाँ क्रान्ति के चरम रूप का, दिव्य स्पर्श मिल पाया था।
वलिया वह पावन जिला रहा, जिसकी जनता मे त्याग भरा।
विद्रोह भरा, अभिमान भरा, मर मिटने का अनुराग भरा ॥१३॥

सभ्यताभिमानी घृणित दास, जिसका उपहास उड़ाते थे।
जिसकी प्रतिभा बल के समक्ष, ईर्ष्या करते घबराते थे।
उस बलिया ने भी आज अभय स्वातंत्र्य सूर्य को चमकाया।
उसने चर्चिल एमरी आदि के, सीने पर शासन पाया ॥१४॥

जिसकी जनता की शांति देख, गाँधी जी भी अचरज खाते।
जिसकी जनता की क्रान्ति देख, नेताजी भी ईर्षा लाते।
बारह अगस्त से दो दिन मे, जो रेल तार संहार हुआ।
यह जिला प्रान्त से छूट गया, शासन का बल बेकार हुआ ॥१५॥

फिर प्रबल शांत जन-बल समक्ष, वे मुट्ठी भर अत्याचारी।
वे रक्त-रँगी पगडी वाले, बन गये भेंड थी लाचारी।
भारत के कोने कोने में, निबलों पर शस्त्र चलाते जो।
अबलाओं पर बीमारों पर, बूढों पर शस्त्र चलाते जो ॥१६॥

जिनकी जनता पर शासन की, नैतिक स्वीकृति छिन चुकी आज।
जिनके अधिकारों के स्वर की, सारी सत्ता मिट चुकी आज।
उनको निरस्त्र कर देना तो, जनता का है कर्त्तव्य कर्म।
फिर अपनी रक्षा हेतु उसे, जन-तंत्र-वाद-निर्माण धर्म ॥१७॥

इन भावो से भर गये लोग, यह शुद्ध क्रान्ति की भाषा थी।
केवल विरोध प्रतिशोध की न, इसमें निषिद्ध अभिलाषा थी।
इसलिए न हिंसा की अधीर या प्रतिहिंसा की धारा थी।
यह शुद्ध बुद्ध मानवता के, पावन विकास की धारा थी ॥१८॥

क्रमशः सारी तहसीलें औ' थाने जनता के वश आये।
सैनिक शहीद पर हुए बहुत जिनके अम्बर में यश छाये।
थी पुलिस कहीं पर कैद-बनी, कुछ थाने अपने छोड़ गये।
ये कायर अपनी राजभक्ति, केवल क्षण भर में तोड़ गये ॥१६॥

पर नेता बन्दी थे अब तक, पहले शासन की कारा मे।
उनकी विमुक्ति को तड़प उठी, जनता लाखो की धारा में।
चारों मार्गों से कारा पर, जब जन-सेना का व्यूह चला।
सागर तरंग सा लहराता, घहराता, लोक-समूह चला ॥२०॥

गर्जन तर्जन करता सा, वह जब वीरों का संभार बढा।
उनके उर का उद्गार बढा, अरि दल में भय-संचार बढा।
यदि आ जाते तो पिस जाता, पंजों से शासन का कण कण।
फिर लाभ कौन था मान्य निगम को लें उनसे लोहा भीषण ॥२१॥

इसलिए आप भागे भागे, नेता लोगों के पास चले।
वे सच्चे आत्मसर्पण के पजे में आकर विवश पले।
छोड़ा नेताओं को तुरंत, जिन पर शासन का भार पडा।
इस विषम काल में जनता की, रक्षा का नव अधिकार पडा ॥२२॥

पर जनता में जिम्मेदारी की वह पवित्र चेतना हुई।
जो चिर स्वतंत्रता हेतु हृदय में, आज और वेदना हुई।
यह नैतिकता आजादी की, जिस हेतु प्राण का मोह त्याग।
है युवक कह रहे अन्यायी, तू भारत से अब भाग भाग।
जनता से कहते जाग जाग, आलस्य स्वार्थ भय त्याग त्याग।
अपने शाश्वत अधिकारो को, तू संघ शक्ति ले माँग माँग ॥२३॥

अब एक चित्र ले चलो देश का, और भाग भी लेना है।
अपने जीवन का रस देकर, प्राणों में राग सँजोना है।
द्वाबा बलिया का हृदय रम्य, घाघरा और और गंगा-संगम।
उनकी धारा की गोदी में, यह पला हुआ बल तेज-चरम ॥२४॥

मंगल पाडे की जन्म-भूमि जो पहला ही विद्रोही था।
जो प्रथम महा स्वातंत्र्य-युद्ध में क्रान्ति-अश्व-आरोही था।
'माता का बंधन टूट जाय', जिसने पहले हुंकार भरी।
'वैरी का मस्तक फूट जाय', जिसने पहले ललकार भरी ॥२५॥

था समय प्रवल वह हिंसा का, उसने कर में तलवार धरी।
पर उसी प्रान्त ने आज अहिंसा, की दृढ शान्ति कटार धरी।
जिसमें न मारने का निश्चय, मर मर कर रिपु को हहराना।
प्राणों की आहुति दे-देकर, रिपु के उर को भी थर्राना ॥२६॥

है इसी भाग ने अमर बैरिया, थाने का इतिहास लिखा।
निज लाल-लाल शोणित-धारा से क्रान्ति-काव्य का भाष्य लिखा।
चौदह अगस्त को जन सेना थाने पर कब्जा कर लेगी।
घोषणा हुई वह पूर्ण अहिंसा के पालन का वर लेगी ॥२७॥

पर याद रहे अधिकार भाव यह, केवल था प्रतीक उज्ज्वल।
अब तक न शक्ति की अधिकृति की, थी जली क्रान्ति की आग नवल।
इसलिए किया जनता ने यह, निश्चय कि तिरंगा फहरा दें।
शासन के गर्वित सीने पर, अपना यह गौरव लहरा दें ॥२८॥

थी वह भोली उसका नेता, गांधी भी कितना भोला था।
पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के, छल बल ने सब तोला था।
ऐसे प्रतीक के झंडो से, शासन का बाल न बाँका है।
मरते आजादी के सपूत, उसका न हिला कुछ साका है ॥२६॥

"देखो ये कैसे पागल हैं, ये नौनिहाल ये नवजवान।
दो हाथ तिरंगे कपडे पर, दे रहे जान हो बेजबान।
आ रही भीड़ यह जनता की, पागल सी झंडा फहराने।
हम लोग विरोध अगर करते, सो जायेंगी अपनी जानें" ॥३०॥

यह सोच दरोगा छलिया ने, मुसका कर उनका मान किया।
'हम भी तो हिन्दुस्तानी है', कह कर स्वदेश-अभिमान किया।
पर ओ पुलीस हिन्दुस्तानी ओ शासन के पुर्जे अफसर।
"धिक्कार तुम्हें मानवता का, दबते हो ऐसा छलबल कर ॥३१॥

"यदि तुम हिन्दुस्तानी होते, होता न स्वार्थ होती न फूट।
तो ओ कुत्सित हिन्दुस्तानी, गोरे लेते क्या तुम्हें लूट?
क्या होता यह अपमान नित्य, माँ बहनों की लज्जा जाती?
क्या इसे देख कर नहीं कभी, ओ पशु तेरी फटती छाती?३२॥

"पर नहीं स्वयं तुमने अपने, हाथों जो अत्याचार किया।
पाकर रिपु का संकेत मात्र, निज ग्राम नगर मिसमार किया।
तुमने लूटा धन दुखियों का, मा-बहनों की इज्जत लूटी।
यह प्रकृति महा जड़ है तुम पर, जो नहीं यहाँ बिजली टूटी ॥३३॥

हां, उस छलिया ने यह कह कर, झंडे का खुद सम्मान किया ।
अपने रहने का स्वयं वहाँ, दो चार दिनों का दान लिया ।
पर उधर चली जब वह जनता, तो झंडा भी था गिरा इधर ।
जागी थाने की व्याकुल अभिशप्ता पृथ्वी की प्यास प्रखर ॥३४॥

जब सुनी बात जन-नायक ने झंडे का, यों अपमान हुआ ।
तो द्वावे भर की जनता को, अपना विद्रोही ज्ञान हुआ ।
जो खेत जोतते थे अपना, वे अपना हल भी छोड चले ।
तृण घास निकाल रहे थे जो, वे हँसिया खुरपा छोड चले ॥३५॥

गायें खुद घर को लौट गईं, पशुओ की थी चिन्ता किसको ।
सब लट्ठ लिये चल पडे तुरत जब जहाँ खबर मिलती जिसको ।
बादल उनको ललकार रहे, वे खेत लहर लहकार रहे ।
मक्के के गढ़ धनखार और पुरवाई से सनकार रहे ॥३६॥

पर नायक ने यह आज्ञा दी, सब लाठी वाठी छोड चलो ।
गाधी जी की यह आज्ञा है, "हिसा से नाता तोड चलो ॥"
अब प्रतीकार का भाव गया, थाने पर कब्जा करना था ।
आदर्श राज्य के स्थापन से जनता की पीड़ा हरना था ॥३७॥

पच्चीस सहस यह जनता जब, थाने पर आकर उमड पडी ।
तो थी पुलीस बदूक लिये छत पर तयार—थी अजब घडी ।
आगे बढ उनके नायक ने, जब शस्त्रार्पण-आदेश दिया ।
तब फिर पुलीस इसपेक्टर ने, जनता-शासन स्वीकार किया ॥३८॥

नायक ने समझा छल उसका, इसलिए नीतिमय चाल चले।
जनता से कहा चलो फिर कर, पर वे द्वाबा के हठी भले।
अड़ गये हमें तो आज बिना, हथियार लिये जाना न गेह।
अड़ गये उधर नभ में बादल, देखना उन्हें था रक्त-मेह ॥३६॥

इस समय पुलिस ने छत पर से रोडा चुन एक उठाया था।
'देखो यह पत्थर चला,' यही संकेत गया बतलाया था।
अब हुई गोलियों की वर्षा, वह धॉय धॉय चिल्लाती थी।
पर इधर जवानों की टोली, सीने पर गोली खाती थी ॥४०॥

इस बीच वीर* बालक ने यह देखा झडा वह हटा रहा।
बिजली सा ऊपर चढा वीर, झडा लेकर वह डटा रहा।
पर एक मिनट के भीतर ही, हत्यारों की सगीन चली।
उसकी अँतड़ी फट गई गिरा, पर 'बंदे मा' की ध्वनि निकली ॥४१॥

हो गये आठ घंटे, शहीद हो गये अमित, पर यह जनता—
घायल होकर भी डटी रही, शस्त्रों के लेने का प्रण था।
संध्या आई उस दिन की, रक्तिम भीषण छटा छिपाने को।
जनता को घर की ओर भेज, शासन का त्राण कराने को ॥४२॥

पर काली रजनी की ऐसी, काली करतूत न चलती थी।
कुछ था प्रकाश का काम नहीं, हर उर में ज्वाला जलती थी।
थी अर्द्ध निशा पर गॉवों से, जनता बढती ही आती थी।
मर मिटने का अरमान लिये, वह तो चढती ही आती थी ॥४३॥

* कौशल्याकुमार

पर घन ने भी षडयन्त्र किया, वर्षा प्रचण्ड थी अँधियारी।
थे हत्यारे घिर रहे उधर, गोलियाँ शेष थीं अब सारी।
जनता का प्रण केवल यह था, "वे गुंडे है हत्यारे हैं।
"हमने नैतिक स्वीकृति छीनी, फिर वे क्यों किर्चें धारे हैं?॥४४॥

"निःशस्त्र करेंगे हम उनको, उनके शरीर से वैर नही।
हम डटे रहेंगे वर्षों तक" अब थी पुलिस की खैर नहीं।
पर घनी निशा की अँधियारी, में वे सब छिपकर भाग चले।
देखा कुछ क्षण में तो पाया, वे प्राण बचा कर भाग चले॥४५॥

कितने माता के लाल छिने, पर नहीं पुलिस पर हाथ उठा।
फिर भी वे छलिया भगे शस्त्र के साथ न प्रण पर माथ उठा।
अति रुष्ट क्षुब्ध जनता ने तब ईंटों से ईंटें बजा दिया।
हल जोत दिया उस थाने पर, उस पर सॉवा भी लगा दिया॥४६॥

श्री शुक्ल यहीं के वासी थे, जनता के बल के केन्द्र भले।
रुक कर हफ्तों निज द्वाबे में, फिर यज्ञ पूर्ण कर पूर्व चले।
मधुबन तरवा, गहमर अथवा थी शेरपूर की कथा यही।
धनियाँमउ और सुजानगंज में यही क्रान्ति की प्रथा रही॥४७॥

कर स्वप्न क्रान्ति का पूर्ण यहाँ श्री शुक्ल पूर्व की ओर गये।
देखे विहार बंगाल आदि में, प्रवल क्रान्ति के रूप नये।
चल पडा दमन का राज्य वहाँ, विद्रोह चिह्न पर दीख रहे।
थाने कितने अब भी खाली, थे पाठ दमन का सीख रहे॥४८॥

रेलें मीलों तक थीं अदृश्य, था तार एक का मार्ग नहीं।
उस प्रथम सात दिवसों में तो, शासन की पंगुल शक्ति रही।
क्रान्तियाँ नहीं वर्षों चलती, वे तो बिजली की मालायें।
क्षण भर मे सत्ता चूर्ण किया, करती है ऐसी ज्वालायें ॥४६॥

सारे विहार में शक्ति पगु, हो गई गवर्नर भीत हुए।
पर नहीं देश ने साथ दिया इसलिए दमन से भीत हुए।
मुंगेर, गया, छपरा, भागलपुर, और पूर्णिया अजर अमर।
भारत स्वतंत्रता के रण में, होगे अक्षय ये ग्राम नगर ॥५०॥

जाते थे जहाँ सुदामा जी, घर लुटे फुंके सब पाते थे।
फिर भी जनता की शक्ति देख, वे अति ही अचरज खाते थे।
फिर बंग प्रान्त में गये शुक्ल मिदनापुर का दर्शन करने।
उस जलती ज्वाला को लखकर अपनी निराश पीडा हरने ॥५१॥

आ गया सितम्बर अट्ठाइस पर यहाँ वही थी क्रान्ति-प्रभा।
तामलुक पुलिस के थाने पर आक्रमण हेतु जुट रही सभा।
आया जुलूस यह पश्चिम से हो चली गोलियों की वर्षा।
दस बीस प्राण ले जनता का पुलिसों का भक्त हृदय हर्षा ॥५२॥

कुछ बाद किन्तु पश्चिम से भी, आया जुलूस अति अभय प्रबल।
माता मतगिनी थी जिसका, नेतृत्व कर रही अचल अटल।
थी आयु तिहत्तर वर्षों की, पर युवकों सा अभिमान भरा।
वृद्धा जननी की सेवा का, मर मिटने का अरमान भरा ॥५३॥

गोलियाँ चलीं दन् दन् परन्तु, बालक ने तोडा भीड़ व्यूह ।
उस आग बरसते में छीना, बदूक पुलिस की तोड व्यूह ।
अभिमन्यु वीर को घेर किन्तु, कुत्सित हत्या की पुलिसों ने ।
श्रीमती हाज़रा लौट पडीं, देखने किया क्या पुलिसों ने ॥५४॥

बढ पड़े पुनः सैनिक आगे, जन सैन्य बढा स'हस अपार ।
माता मतगिनी के हाथों मे, रहा तिरंगा त्याग सार ।
मारा पुलीस ने दण्ड एक, वह हाथ कि जिससे टूट गया ।
जिसमें झंडा था लहर रहा झंडे का डडा टूट गया ॥५५॥

वह हाथ गिरा पर झंडा तो, उसमें सगर्व फहराता था ।
फिर गोली सर में लगी गिरी, पर अब भी वह लहराता था ।
आकर कुत्सित पुलीस ने जब, उसको लेने का यत्न किया ।
मरती माता ने उसे पकड, साहस से स्वर्ग-प्रयाण किया ॥५६॥

अब शुक्ल पुनः चल पड़े उधर देखें बलिया की दशा नई ।
पर छपरा पहुँचे नहीं, तभी उन गुप्तचरों की दृष्टि गई ।
वे चलते पथ में पकड़ गये, पहुँचे बलिया के लाक-अप में
रह जहाँ मास भर शुक्ला ने देखे भीषणता के सपने ॥५७॥

विनाश

सर्ग १७

वे हवालात के कटु अनुभव ।

आई निशि दुनिया को देने, विश्राम शान्ति सुख का अनुभव ।
पर नित्य शुक्ल के लिए वहाँ थी काल-रात्रि, था भैरव रव ।
था अंधकार मय पिंजरा वह, मशकों का क्रन्दन होता था ।
एकान्तवास में शुक्ल-सदृश, सैनिक भी साहस खोता था ।
मलमूत्र सड़ायँध उठ उठ कर, उनको व्याकुल कर जाती थी ।
देशी कम्बल पर घाव भरी, वह पीठ और दुख पाती थी ।
निद्रा का दृग में वास कहाँ, वह हुआ स्वयं था जीवित शव ।
वे हवालात के कटु अनुभव ॥१॥

दिन आता बन कर महाकाल ।

प्राची से सूर्य निकलता था मुख किये क्रोध से लाल-लाल ।
थे इधर पहुँच जाते पुलिस सी० आई० डी० ले प्रश्न-जाल ।
खुल जाता था वह हवालात भैरव के अनुचर भर जाते ।
फिर भूँक भूँक कर मास नोच कर काट काट कर तर जाते ।
"हो खड़े पाँव फैला लो तुम, झुक जाओ मुर्गा बन जाओ ।
रक्खो चूतड पर पत्थर औ यूसूफ पीटो और पिटवाओ ।
"होता वेहोश यह मक्कड है, ला पानी के छींटे डालो ।
फिर पीटो तब वस भेद दुष्ट, इस मक्कड से तुम कहलालो ।
इन पर न दया करना हरगिज, ये हैं शासन के महाकाल ॥२॥

डाक्टर ने बाधा दी आकर ।

यदि और पिटा यह नौजवान तो यह निश्चय मर जावेगा ।
शासन पुलीस पर व्यर्थ एक, मरदूद कलंक लगावेगा ।
इसलिए एक हफ्ते इस पर, आक्रमण नहीं करना होगा ।
भोजन औषधि दे इन सडती, घावो को भी भरना होगा ।
अतएव मिला अवकाश उसे, थे काम पुलिस को भी अनेक ।
जब स्वस्थ हुआ कुछ शुरू हुए, वे चित्र उसे सुस्मृत अनेक ।
जिनको अपनी यात्राओं मे, उत्तर भारत में देखा था ।
कुछ दवी दबाई खबरों से, दक्षिण का पाया लेखा था ।
अब पुलिस न आती थी परन्तु वे दृश्य भयंकर आते थे ।
इस अंधकार में भूत बने, वे मानों उसे सताते थे ।

आँखें उसकी मुँद जाती थीं मुट्ठियाँ क्रोध से बँध जातीं।
पिसते थे दाँत अकेले मे, जब याद दमन की आ जाती।
निश्चय है न्यायी राष्ट्र-सभा, गाँधी उदार प्रातिशोध न लें।
संभव है इनके पाप भूत, इनको खुद ही कुछ चैन न दें।
थे शुक्ल सोचते नित्य यही, इस भीषण लाकअप मे पडकर ॥३॥

फौजी आये ले कर मशाल।

अपनी स्वतंत्रता पाने को, जनता ने थोडा यत्न किया।
नेताओं के बदीपन पर, जन-क्षोभ प्रदर्शन यत्न किया।
पर नहीं हुए इस क्रान्ति-यज्ञ से, पूर्ण प्रभावित सभी प्रान्त।
हा खेद रहे कुछ प्रान्त जिले कायर सपूत (?) बन सुजन शात।
इसलिए शाति के दूतों को जन रक्षक वीर पुलीसों को।
गद्दारो पुलिस-दलालों को और चोर-डाकुओ बीसों को।
मिल गया अमर अवसर महान्, ले चले क्रूर पशुओं का दल।
था जहाँ एक भी काम्ग्रेस जन, आये बन वहाँ प्रलय-बादल।
बन्दूकें कन्धो पर लटकीं, किर्चों से कटि-तट लैस किये।
ये गुरखे सिक्ख बलूची या मद्रासी आये तैश किये ॥४॥

जलते धू धू कर ग्राम ग्राम।

जलते छप्पर के फूसो से उठतीं लपटें लप लप कराल।
बाँसों के जलने से फट् फट् गाँठों का रव भीषण विशाल।
चल पडी हवा शासन-सेवक, बढती जाती थी महाज्वाल।
घर के घर शीघ्र निगलती सी, मुँह फैलाती थी लाल लाल।

पशु तोड बध कुछ भगे, जले कुछ भुन भुन कर छटपटा मरे ।
भयभीत ग्राम के बासी सब भयवश दुखवश अधमरे परे ।
बच्चे हहराते, चिल्लाते रोते कराहते भाग रहे ।
भहराते गिरते थर्राते, नारी नर साहस त्याग रहे ।
वे खडे आज निरुपाय हाय, उनकी आँखों के ही समक्ष ।
जल रहा अन्न जल रहे वस्त्र, पशु बच्चे तक जलते समक्ष ।
पानी न डाल भी सके विवश सम्पूर्ण गॉव अब क्षार हुआ ।
जब लगे देव नभ में जलने, तो बादल दल तैयार हुआ ।
घटों तक पानी घमासान बरसा नभ को तब चैन मिला ।
नगी दीवालें मिट्टी की गल घुली उन्हें तब चैन मिला ।
पानी की धारा से धुलकर शासन कलंक क्या बहा दूर ।
वह गाव हो गया साफ रहे खॅडहर केवल कुछ दूर दूर ।
जो कार्य नाश का करने में वर्षों तक रहती प्रकृति व्यस्त ।
वह वीर सैनिकों ने क्षण में कर दिया गॉव सब अस्त ध्वस्त ।

जलते धू धू कर ग्राम ग्राम ।।५।।

गारद आया गारद आया ।

भगते जाते कहते जाते उर में भय का वारिद छाया ।
"मक्के के घर में छिपो चलो भग चलो हुई ललकार बडी ।
बच्चों को लेकर भगो नही तो अभी नाश ले पुलिस खडी ।
कुलवधुओं ने अब तक न देहली के बाहर पद रक्खा था ।
जनता ने सन् सत्तावन से यह दमन-स्वाद क्या चक्खा था ।

चल पड़ी एक भावी जननी दुस्सह्य गर्भ का भार लिये।
प्राणों से लडती सी पग पग, शिशु के प्राणों का प्यार लिये।
पग पग पर गिरता चला रुधिर, उसकी दुख कथा बताता सा।
भारत माता के अपमानों का, कटु इतिहास लिखाता सा।
जा गिरी खेत में मूर्च्छा से क्या हुआ उसे क्या ज्ञात भला।
दो घंटे पर देखा उसने, सद्यः प्रसून दीखा कुम्हला।
ऐसे शिश नाश-व्यथा क्षण के होगे विद्रोही प्रलय-बाण।
साम्राज्यवाद की सत्ता से इनका क्या होगा कभी त्राण ॥६॥

गारद आया, गारद आया।

गारद क्या मरण निशानी है, जिसका इतना है भय छाया।
कुछ चौकीदार चले सजकर, इनको शिकार भी मिल जाये।
आये जब वे उस ग्राम बीच, तो सकल ग्राम खाली पाये।
रक्षक की क्या हस्ती होती, इन पुलिस तक्षकों के आगे?
कुछ नवजवान क्या कर लेते, इन अमित भक्षकों के आगे?
था मार्ग अकण्टक अतः खोल कर द्वार, लूट में लगे वीर।
जो कुछ पाये सब लूट चले, निश्शंक और गम्भीर धीर।
पर घुसे एक घर मे ज्योंही, पाया दस युवकों को तयार।
जो अपने घर में विद्यमान, जिन पर न पडा कायर तुषार।
उन हाथो ने इन चोरों की, सेवा सप्रेम कर दिया पूर्ण।
ये कायर पशु भग गये शीघ्र थाने में होवे रपट पूर्ण।

रो रोकर अपने सत्य न्याय, या राजभक्ति का दे प्रमाण।
उस जनवत्सल इन्सपेक्टर के, उर में करुणा का लगा बाण।
उसका क्रोधानल धधकाया ॥७॥

श्री दारोगा जी हो अधीर।
थे व्यथित क्षुब्ध अभिमान भरे, उनके उर में उठ रही पीर।
गाँवो के गर्वित युवकों ने, चौकीदारो पर कर प्रहार।
शासन को दिया चुनौती जो, वह दारोगा को अगिकार।
इतने में दीखे आते वे, जिनके घर लूटे गये वहाँ।
उनको लखकर उन्मत्त हुए, कर्त्तव्य-ज्ञान तो कभी बहा।
जब की फरियाद गरीबो ने, तो माँ बहनों पर बलात्कार—
करने की धमकी गाली दे, हो गया सिंह उठ कर तयार।
पीछे उससे बन्दूक लिये, लग गये सिपाही चिर अनुचर।
"क्या लुटा तुम्हारा है दुष्टो ! हम अभी देखते है चलकर।"
ले चले उन्हें आगे आगे, किर्चों से चेतनता देकर।
गाली पुलीस का वेद मंत्र, उसका अविरत उच्चारण कर।
पहुँचे उस वस्ती मे अधीर, अवशेष माल सब लूट लिया।
ललकार दिया, फटकार दिया धमकी दे दे कर लूट लिया।
फिर कहा शिकायत हो पूरी बँध जायँ पेड में ये बागी।
मगरूर अभागे फिर न कभी, शासक पर लगा सकें दागी।
दरवाजे पर जो नीम वृक्ष, उसके तन में कसकर बाँधा।
फिर फायर का आर्डर देकर, शासक का अपना बल साधा।

फिर धाय हुई छटपटा पडा, पक्षी भी तरु का अंग बना ।
कुछ देर वाद फिर धॉय हुई, उस साथी का भी संग बना ।
फिर शव के सम्मुख हॅस हॅस कर दनुजों ने लूटा क्षीर पिया ।
मानवता का यह रुधिर पिया, अपना विनाश-विष-नीर पिया ।
यह अॅगरेजी वलवत्ता के, शासन की सत्य कहानी है ।
यह काव्य-भूषणों से विहीन, पशुता की नग्न निशानी है ।
वह कर्मवीर जीवित प्रसन्न, निश्शंक क्योंकि हम धर्मवीर ॥८॥

हर हर हर हर हहराती सी ।
वढ रही फौज की लारी वह जनता का उर दहलाती सी ।
किल किल कल कल का शोर मचा आतक त्रास फैलाते थे ।
बन्दूकें बाहर को ताने टामी निशान पा जाते थे ।
दिखते दूरी पर जाते यदि वच्चे बूढे या नौजवान ।
यदि टोपी या खादी पहने तो वे बन जाते थे निशान ।
जव ठाय हुई गिर जाते थे भूलुण्ठित मस्तक होता था ।
छटपटा हारते विवश प्राण वह जाता खूनी सोता था ।
मानव को यों आखेट बना सत्ता निज दर्प दिखाती सी ॥६॥

चल पडी रेल ले रक्षक दल ।
कुछ मार्ग कटे थे रेलों के, शासक को मिला दमन का वल ।
इंजन आगे आगे झक झक करता, उर धक् धक् करता था ।
इसके आगे दो डब्बों का वलिदान परीक्षण चलता था ।

विनाश

पीछे छतहीन अनेको थे डब्बे टामी गन भार लिये।
टामी या सिक्ख बलूची का अपने तन पर उपहार किये।
देखा पथ के कुछ दूर घासवाली को वही शिकार बनी।
पथशोधक कुलियों की संहति विद्रोह दण्ड-अधिकार बनी।
सोचा बागी पथ तोड़ रहे बस बरसे वहा प्रलय बादल।
कुलियों के बिछे अनेकों दल।

आई मलेटरी आँधी-सी।

तूफान नाश का साथ लिये शासन घमण्ड से घहराते।
बन्दूकें किर्चें धारे वे, गावो को भय से थर्राते।
नाके नाके सब घेर खडे, बन गया गाँव बेबस कारा।
चल पडी वहाँ की जनता पर अब अत्याचारों की धारा।
सर्वस्व लूट फिर अग्निकाण्ड शासन का सच्चा रूप दिखा।
यों उन दैत्यो ने पशुता का कुत्सित जघन्य इतिहास लिखा।
नारी की लज्जा-रक्षा को थे हुए जहाँ जौहर अनेक।
जिसमें जननी का गौरव ही सब से पवित्र उज्ज्वल विवेक।
पर हाय वही अबलाओं पर बल का प्रयोग हो रहा आज।
उनकी निरीह मानवता पर पशुता-प्रयोग हो रहा आज।
झटके से पंजा तोड दिया बन गई प्रचण्ड भवानी वह।
वह कुत्ता औधा गिरा और बन गई कराल निशानी वह।
पर हुआ सचेतन सैनिक तो कुकरी के बल उसको बाँधा।
हाथों को पीछे कर उनको रस्सी में खंभे से साधा।

नाजी वर्वरता भी इसके सम्मुख होगी लज्जित नितांत।
अंग्रेजी शासन की स्वतंत्रता प्रजातत्र का यह दिनात ॥११॥

ये वॅधे पेड से मानव है।
इनको पीड़ित करने वाले क्या मानव है या दानव हैं ?
इनके तन पर है सूत नहीं सर लटक रहा भू के ऊपर।
पैरों मे रस्से बॉध उसे अटकाया निर्दय डाली पर।
फिर भिगो तेल में बेंत सड़ासड मार चुके कोडे अनेक।
वे रक्तधार ले निकल चुके नगे शरीर पर एक एक।
अब काली सी रेखाये हैं हिसक पशुता की कथा लिये।
मुख से है राल निकलती सी मूर्च्छित त्रिशकु की व्यथा लिये।
नारी नर नंगे लटका कर पिट गये क्रूरता से जघन्य।
यह क्षोभपूर्ण था क्रान्तिकाल उनके प्राण का आलोक धन्य ॥१२॥

आया पुलसी शासन कराल।
जब तोप और वन्दूकों से बुझ सकी नहीं विद्रोह-ज्वाल।
तो शासन का यह देश-व्याह विषधर विष ले फुफकार उठा।
यह सत्य न्याय मानवता को आतंकित कर ललकार उठा।
फौजों की दमन कृपाणी से प्राणों को मिलता तुरत मोक्ष।
पर तिल तिल शोषण करने का था पुलिस-अस्त्र भीषण परोक्ष।
गॉवों की नस नस से परिचित नस नस का रक्त निकाल रहे।
हड्डी तक चूस चूस कर ये प्रमुदित नर घातक व्याल रहे।
इनसे न त्राण की सफल चाल ॥१३॥

सुन्दर सिंह की महिमा अपार ।

बलिया का बीता क्रान्ति-काल, आ गया दमन का नया ज्वार ।
पीकर मदिरा मदमत्त बना हो गया अश्व पर वह सवार ।
चल पडा दिशा का ज्ञान छोड, खेतों को करता चला पार ।
दीखा गरीब हलवाहा जो उसको पिस्टल से दिया छेद ।
वह पडी रुधिर की प्रखर धार कैसा पाशव यह लक्ष्य-भेद ।
उस रुधिर धार से हाथ और मुँह को रँग कर विकराल बना ।
वह दानव दीन कसानों को, डसने को भीषण व्याल बना ।
फिर घोडे पर चढ़ चला गाँव की ओर आज यमराज स्वयं।
पिस्टल दिखलाता धमकाता था वह अंग्रेजी राज स्वयं ।
"जनता मनमाना धन देने से आज अगर इनकार करे ।
तो उसके बच्चे बालायें सब उस किसान की मौत मरें" ।
डर कर गहने गिरवी रख कर उस दानव का सत्कार किया ।
लघु लघु प्रदेश ने हफ्ते में लाखों का धन उपहार दिया ।
तन बिका और मन बिका तथा नैतिक बल उनका क्षार हुआ ।
पशुता के ताण्डव नर्तन में मानवता का संहार हुआ ॥१४॥

शासन के सिर पर चढा भार ।

जनता ने 'भारत छोडो' की अभिमान-पूर्ण आज्ञा प्रचार ।
कर दिया क्रुद्ध अति शासन को हो गया दमन अब दुर्निवार ।
व्यय हुए हजारों के गोले गोली पेट्रोल रसद सारे ।
कितने वेतन औ' पुरस्कार दे गये लगाये हत्यारे ।

उस ओर चल रहा विश्व-युद्ध जग की स्वतंत्रता के हितार्थ।
अंग्रेजी शासन का अनंत व्यय था पर उसका कौन स्वार्थ।
इसलिए सभी उन क्षेत्रो पर सामूहिक दण्ड-विधान हुआ।
जिनमें अपनी आजादी का कुछ विद्रोही अरमान हुआ।
दो गाँवो पर दो लाख इधर नौ गाँवों पर दस लाख उधर।
उनकी भीषण विद्रोह नीति का यही हुआ प्रतिकार प्रखर।
यह धन वसूल करने मे फिर बेबस पुलीस को हुआ क्लेश।
फिर उनके बल का चक्र चला हो गया देश व्याकुल विशेष।
फैला फिर नभ में हहाकार ॥१५॥

आये पुलीस दल हो तयार।
सामूहिक दण्ड वसूल करें कुछ अपना श्रम भी लें निकाल।
रो रो कर गिड गिड़ कर जनता अवकाश चार दिन माँग रही।
अपनी अनाथ दुर्दशा देख युग युग का साहस त्याग रही।
आये शासन के यम कराल अपनी भीषण दाढ़ें निकाल।
माँगा किसान से दण्ड वचन में गाली का विष विषम ढाल।
वे दम्पति बोले हाथ जोड़ "सरकार न कौडी एक पास।
यह बच्चा था बीमार बहुत जिस से पैसा पैसा खलास"।
गरजा वह गोरा सारजेण्ट, "यह नही बहाना चलता है।
बच्चा वसूल धन होने में बाधक, यह हमको खलता है।"
इसलिए जला दी आग वहाँ बेचारे का छप्पर उतार।

फिर एक हिंस्र पशु ने बच्चे की टाँगों को कर में सँभार ।
लटकाया जलती ज्वाला में जो धू धू करती धुवाँ-धार ।
छटपटा पडा शिशु ज्वाला से पशु का भी जलने लगा हाथ ।
तब उसने शिशु को छोड दिया पावक में उसका जला गात ।
तिल मिल, तिल-मिल कर प्राण दिया, जैसे जीवित मछली भुनती ।
हो शात देश की जनता भी यह पशुता की गाथा सुनती ।
यह घटना देती उर विदार ॥१६॥

।

जो लोग हो गये थे फरार ।

उनका तो पता लगाना था नौकरशाही का स्वाधिकार ।
पर वे तो सर्वान्तर्यामी सी० आई० डी० को छका चले ।
छिप चले और पजे में आ, छल बल से धत्ता बता चले ।
थी पुलिस महा हैरान न उनका नाम निशान पता मिलता ।
उनकी आजादी से शासन का नाश सोच कर दिल हिलता ।
इसलिए एक नव युक्ति चली---उनके परिवारों पर प्रहार ।
माँ बहनों बूढे बच्चों पर खूनी पजे की प्रखर धार ।
ताडन पीडन चल पडा खूब चोरी डाके का अवलम्बन ।
शासन के न्याय समर्थक का अब बलात्कार का आयोजन ।
यदि हो फरार में अभी शेष मानव की कुछ भी निर्बलता ।
तो माँ बहनों की रक्षा को खुल पड़े हृदय की कोमलता ।

पर जिन्हें राष्ट्र-विद्रोह सूत्र का वर संचालन करना था।
उनको न कुटिल कायर पशुओ की ललकारो मे पडना था।
कण कण पिस उठे मौन रह कर हँस उन वीरों के परिवार ॥१७॥

शुक्ला को बीता मास एक।
इस काल कोठरी में रहते गाते प्रतिक्षण विद्रोह टेक।
उनके मानस पर ये विचित्र करुणा-मय चित्र सुहाते थे।
उनकी असह्य दुर्दशा भुला जीवन-महत्व बतलाते थे।
जो किया देश में शासन ने कर न्याय-अस्त्र का अवलम्बन।
उससे डगमग हो जाती थी उनके प्राणो की चिर कम्पन।
चल रही पुलिस की जिज्ञासा अब तक न ज्ञान आलोक मिला।
अफसर जन की फटकार मिली पेशे पर घृणा न शोक मिला।
अब रचे यत्न नूतन अनेक ॥ १८ ॥

अब सह्य न था यह व्यथाभार।
भोजन न मिला दो दिन से पर इसका न कभी उट्ठा विचार।
पर जब घावों को सहलाने निद्रा धीरे से आती थी।
तो वही बेंत की नोको से, फटकार भगाई जाती थी।
वह आती थी फिर चुपके से, निज मरहम मृदुल लगाने को।
पर वही निशाचर किर्च चुभा प्रस्तुत था उसे भगाने को।
रातें युग सी, दिन कल्प हुए, सप्ताह विश्व की आयु बना।
क्षण क्षण असह्य हो गया और मस्तिष्क व्यथा की वायु बना।

सर चकराता भन्नाता था, नस नस में मूर्च्छा आती थी।
सब अंग फटे से जाते थे, चेतना विकल अकुलाती थी।
चेतनाहीन क्या प्राण भला निज-दल का भेद छिपा सकते।
सन्देह हुआ अब साहस के भी अन्तिम प्रबल चरण थकते।
यदि भेद गया तो सह्य न था, विश्वासघात का भार बड़ा।
झुकने से पहले मरने का निश्चय कर सैनिक शुक्ल अडा।
रह जाय भेद मरते मरते यह उसके प्राणों की पुकार ॥१६॥
इसलिए शुक्ल होकर हताश।

हो गया आज उन्मत्त सदृश जीवन की तज कर सकल आश।
अब उन जिज्ञासु पिशाचो को उसने खुल कर ललकार दिया।
उन पशुओं को थुक्कार दिया उनकी माँ को धिक्कार दिया।
"यदि और प्रश्न मुख से निकला तो दानव का कर चूर्ण चूर्ण।
मै मसल धूलि में मिला उसे कर दूँगा उसका नाश पूर्ण।"
यदि खुला हमारा फाटक तो यह गला तुम्हारा भींच भींच।
तेरे शव पर अब अट्टहास करके दम लूँगा घृणित नीच।
मरने से पहले तुमको भी मरने का स्वाद चखाऊँगा।
भेद बताकर देशद्रोह से पूर्व मृत्यु लिपटाऊँगा।
यह सुनकर काँपे पुलिस और उनका गोरा अफसर आया।
मानवता का सन्देश लिये अब वह दानव डर कर आया।
सोचा कि असम्भव भेद-प्राप्ति इस हठी वीर से है बिल्कुल।
इस हेतु जेल को भेज दिया हो विवश पराजित अति निराश ॥२०॥

बंधन

सर्ग १८

रवि रोष- रक्त मुख लेकर, पश्चिम दिशि में अकुलाता।
दिन के कठोर श्रम से थक, विश्राम-प्राप्ति को जाता।
अब थी न धरा पर उसके भीषण आतप की ज्वाला।
अब तो पर छाया जाता छाया का परदा काला ॥१॥

नभ ने कर स्नेह विदाई, पहनाई घन की माला।
स्वागत को उतर रही थी श्यामारुण संध्या-बाला।
खग लौट रहे नीडों को, था गगन मधुर-ध्वनि संकुल।
श्री शुक्ल प्रसन्न वदन थे, थी पुलिस आज चिन्ताकुल ॥२॥

बढ़ते वे धीरे-धीरे बेडी झनझन करती थी।
मिलती विहग-ध्वनियों में, पर फिर खन खन करती थी।
दायें बायें चलते थे, दो पुलिस कर्म के प्रेरे।
उठते थे पाँव न उनके, थी ग्लानि-लाज दुख घेरे ॥३॥

बंधन

पहले पहुँचे न्यायालय, डिप्टी से ले परवाना।
चरणों को शीघ्र बनाया कारा-पथ का पैमाना।
थी बँधी कमर में रस्सी, कर में था श्यामल कंकण।
चरणों में झंकृत बेडी, उर में था पीडा का व्रण ॥४॥

भय-ग्लानि क्षोभ प्रतिहिंसा से दर्शक भरते जाते।
लख कर घमण्ड शासन का कुछ निश्चय करते जाते।
पश्चिम को चलते चलते, आई बलिया की कारा।
काली ईंटों का घेरा, वह भीषण लौह-किवाडा ॥५॥

सोचा पायेंगे अब तो वे भी विश्राम सहारा।
फाटक खुलते ही देखा पशुता का क्रूर अखाडा।
थे खडे हाथ में लेकर डंडे पक्के अभिमानी।
नम्बरदारों जमदारों की खडी पंक्ति दीवानी ॥६॥

जेलर थे कुछ दूरी पर दफ्तर अपना फैलाये।
बैठे थे यमदूतों को कर्तव्यादेश सिखाये।
ज्यों ही फाटक खुलता था कोई बंदी था आता।
आँखें ज्यों उस पर पडती त्योंही दावत था पाता ॥७॥

गिरता था आघातों, से मूके घूसे लातों से।
मूर्च्छित होता बेचारा, ऐसे वज्रकापातों से।
फिर होश हुई तो जेलर के सम्मुख लाया जाता।
उस अभिमानी ज्ञानी से कुछ पाठ पढाया जाता ॥८॥

"तुम अंगरेजी सत्ता से विद्रोह कर रहे भारी।
करती है हर विधि रक्षा सरकार तथापि तुम्हारी।
नाजी-पंजे में होते, अब तक निशान क्या पाते ?
'जाकर दोजख में तो क्या तुम ये नारे चिल्लाते ? ॥९॥

बाहर जो कुछ शैतानी, या विद्रोही हैवानी।
तुमने की वह सब भूलो, यह दुनिया है दीवानी।
यह कारा है शासन के भीषण कृपाण की धारा।
सब सोच समझ कर चलना, कहना है सत्य हमारा॥"१०॥

दूसरा खुला जब फाटक तब मिले बंधु अनुरागी।
उनकी जय-ध्वनि के मरहम से मिटी घाव की दागी।
निज निज बैरक से चक्कर के फाटक पर वे आये।
जय इन्कलाब नारों से शासक का दिल दहलाये॥११॥

अब हुआ शुक्ल का स्वागत गुड चने और पानी से।
मिट गई व्यथा सब उनकी थी रक्षा हैरानी से।
बैरक में रजनी बीती आई निद्रा दीवानी।
पीड़ा हरकर, जगती की चिन्ता ले चली सयानी॥१२॥

× × ×

बंद हुआ चाभी का चलना, पहरे का प्रतिबंध हटा।
आँखें मलते मलते सम्मुख जमदारों का ठाट टटा।
"जोड़े जोड़े से बैठो तुम जल्दी" यह आदेश मिला।
क़ैदी थे लाचार, 'जमी पर बैठो' यह संदेश मिला॥१३॥

यह अपमानजनक आज्ञा थी उनको तो स्वीकार नहीं।
इसीलिए लाठी ले वार्डर की सेना ललकार रही।
हुए धराशायी कुछ क़ैदी आज हठीले अभिमानी।
पर न उन्होंने जीते जी झुकने की माया जानी ॥१४॥

फिर कुछ देर बाद डाक्टर के सन्मुख उनको ले आकर।
घावों पर मरहम लगवाया, मुलाहज़ा भी करवा कर।
लिया वज़न नापी लम्बाई सीने की चौड़ाई भी।
देखा घाव-निशान और रोगों की कठिन कड़ाई भी ॥१५॥

किन्तु न देखा घाव हृदय का प्रण की दृढ़ता लख न सके।
आत्मा की ऊँचाई अथवा गौरव सत्य परख न सके।
फिर साहब के सन्मुख आये दया दृष्टि वरदान मिला।
जेलर से व्याख्यान और क्रूरता पूर्ण अभिमान मिला ॥१६॥

भिन्न भिन्न ग्रन्थों में उनके कार्य आदि का अंकन था।
जेल जगत यह अति विचित्र था, सुन्दरतम था, शोभन था।
जब कौशिक राजर्षिप्रवर ने कर देवों से द्रोह घना।
जो नवीन जग रचा, सिमिट कर वही आज है जेल बना ॥१७॥

उसमें था कुहरा फैला सा, यहाँ विषमता का तम तोम।
वहाँ एक था कोदों इसमें गेहूँ चने ज्वार का जोम।
नाग भिन्न, भिन्न हैं मृग, भिन्न यहाँ की मानवता।
चोर तिकड़मी पूज्य बना है, नृत्य कर रही दानवता ॥१८॥

कारा में अवतार नया है, जग के सब कर्मों का अंत।
यहाँ सदा पतझड रहता है वर्षा हो या शरद वसंत।
यहाँ दमन पीडा है पल-पल अपमानों का है उपचार।
करुणा प्रेम अहिसा अथवा सत्य दया का चिर संहार ॥१६॥

फिर भी बंदी सदा तरंगित रहता सुख की धारा में।
है आश्चर्य भला मिलता है क्या सुख ऐसी कारा में।
लाठी बैंत और बेड़ी के उपहारो से व्यथित नितांत।
फिर भी मुदित देख बदी से कहा शुक्र ने लख एकात ॥२०॥
"किस सतत क्षत साधना में लीन हो तुम राजबदी।
कौन स्वर्गिक भाव तुमको मुक्त रखता आज बंदी।
तोड़कर निज प्रियतमा के आग्रही भुज-पाश उज्ज्वल।
छोडकर नव कुसुम शिशु के तोतले कल-कण्ठ कोमल।
बाप-माँ परिवार प्रिय ऐश्वर्य-सुख सब त्याग बंदी।
किस अपूर्व विभूति से होकर रहे अनुराग बंदी ? ॥२१॥

भय भरी काली दिवारें, चिरोत्पीडन की कथायें।
मूक होकर कह रही है, युगों की अगणित व्यथायें॥
इस परिधि के विश्व में कितने अगम संसार बंदी।
इस घृणा के लोक मे करते किसे तुम प्यार बदी ?॥२२॥

सीखचों के बाद क्रमशः सीखचों का लोक बसता।
बंधनों के लोक में आकर स्वयं आलोक फँसता।
ज्ञान का सद्वृत्ति का सुख का अमित इनकार बदी।
कहाँ से देता तुम्हे यह तेज कारागार बंदी ॥२३॥

बंधन

बेडियों में पैर बंदी हथकडी में कर पडे हैं।
'अडगडों' पर दण्ड लेकर वार्डर यमचर खडे हैं।
काल के कीटाणु पक्के और नम्बरदार बंदी।
यहाँ केवल गालियाँ चीत्कार मंत्रोच्चार बंदी ॥२४॥

इस अँधेरी कोठरी में है तुम्हारी देह बंदी।
नासिका दुर्गंध में, तम में तुम्हारे नेत्र बंदी।
बाह्य जग से छिन्न हो सम्बन्ध, तेरे भाव बंदी।
इस विवशता-कूप में अस्तित्व के भी भाव बंदी ॥२५॥

दाल रोटी-साग का कच्चा सडा आहार पाते।
नित्य केवल यातना-अपमान का उपहार पाते।
कौन है देता तुम्हे स्वातत्र्य का आभास बंदी ?
फिर कहाँ ओ मस्त पाते यह मदिर मधुहास बंदी ?॥२६॥

"बन्धु मेरी यातना का विशद तुमने चित्र खींचा।
किन्तु उस अद्भुत प्रभा के तेज से निज नेत्र मींचा।
पास जिसके हो खडी यदि मौत भी खुद मुस्कराये।
वज्र टूटे आग बरसे वीर फिर भी भय न खाये ॥२७॥

"राजनैतिक आर्थिक स्वाधीनता आत्मिक हमारी।
इन दुखों के जाल से हे झाँकती वह तेजधारी।
है यही निश्चय मिलेगा स्वर्ण का संसार मुझको।
इसी आशा में बना है स्वर्ग कारागार मुझको ॥२८॥

किन्तु न्याय तो उभय पक्ष के बिना नहीं चल सकता है।
सत्याग्रही वीर बापू क्या इसे सहन कर सकता है।
सत्य दिखाने का शासन को उसने बहुत प्रयत्न किया।
पत्र लिखे श्री लिनलिथगो को धीर सखा सा यत्न किया॥३६॥

और कहा, यदि न्याय कहेगा राष्ट्र सभा अपराधी है।
सत्य कहेगा उभयपक्ष का यदि अपराधी गाधी है।
तो कर प्रायश्चित्त प्राण के तजने का है प्रण मेरा।
अवसर दो इसके निर्णय का है असह्य उर व्रण मेरा॥४०॥

किन्तु न्याय के दंभी रक्षक विश्व-न्याय को मरते थे।
नहीं उन्हें अवकाश न इच्छा शुद्ध सत्य से डरते थे।
उत्तर मिला गर्वमय, बापू निज निश्चय पर अटल हुआ।
वंदी व्यथित देश का उर भी भय शंका से विकल हुआ॥४१॥

नौ फरवरी प्रभात हुआ भारत भय से थर्राता था।
अनल परीक्षा तर जायेंगे क्या? यह मन में आता था।
हुआ प्रथम सप्ताह लगी थी मृत्यु वहाँ पर मँडराने।
दुखी देश का एक मात्र वह रत्न अलौकिक ले जाने॥४२॥

अब जल भी न उतर सकता था उसके कण्ठों के नीचे।
हुआ वमन, मूर्च्छा भी आई दुखी देश ने दृग मीचे।
क्रन्दन हुआ, देश के कोने कोने से स्वर गूँज उठा।
छोड़ो बापू को, गाधी को छोडो, छोडो गूँज उठा॥४३॥

हिन्दू मुस्लिम सिक्ख पारसी जैन बौद्ध या ईसाई ।
कृषक 'मजूर' भूप मिल-मालिक सब के मुख से ध्वनि आई ।
बोले कुछ सच्चे परदेशी गाधी को दो छोड अभी ।
नही बहेगी जो विषधारा उसमें होंगे नष्ट सभी ॥४४॥

मादी अरो नलिनिरजन भी हत्यारों का साथ तजे ।
'रघुपति राघव रामचद्र' के दुखी देश ने मत्र भजे ।
डाक्टर और वैद्य रोते थे सोच बुझा वह जीवन-दीप ।
कहा, देश तत्पर हो सुनने को बापू का अंत समीप ॥४५॥

साँसें रुकीं देश की सहसा जीवन क्षण क्षण भार बना ।
त्राहि त्राहि मच गई विश्व में दास देश दुख-सार बना ।
रवि था पश्चिम क्षितिज डूब रहा छाता घोर अँधेरा था ।
किंतु हटे बादल तो देखा अभी प्रकाश-बसेरा था ॥४६॥

वह मुरझाता सुमन खिला कुछ अधरों पर आई मुसकान ।
पार हुआ वह काल-भँवर के, जगा देश का भाग्य-विहान ।
बचा देश का प्राण किन्तु विष हत्यारों का दीख पडा ।
उनके न्याय-प्रेम का परदा फटा, जगत को दीख पड़ा ॥४७॥

था आगा खाँ राजमहल में चर्चिल को चंदन काफी ।
और देश में अंग्रेज़ों के बल का अभिनंदन काफी ।
हुई देश में शान्ति क्षणों को भीतर विष बढता जाता ।
घूसखोर चोरों का तारा अंबर में चढता जाता ॥४८॥

बाहर तो स्वातंत्र्य-समर का यज्ञ-कुण्ड वह जलता था।
भीतर बंदी के अधिकारों का संग्राम मचलता था।
दमन हुआ, उपहार बेंत का मिला, द्रोह-अधिकार मिला।
औ महेन्द्र को जीवन बलि की कटुतम स्मृति का भार मिला ॥४६॥

वे विहार के अमर विप्लवी देशभक्ति के अपराधी।
अंग्रेजों के घन-घमण्ड के थे वे भीषणतम आँधी।
इसीलिए उनको फाँसी का मिला अमर बलिदान महान।
बिटिश न्याय के शस्त्रगार का सबसे उज्ज्वल तीक्ष्ण कृपाण ॥५०॥

था महेन्द्र को इस गौरवमय पुरस्कार पर अति अभिमान।
पर चुभता था हृदय हृदय में काँटे सा उनका अवसान।
जिस दिन निर्णय मिला न्याय का तनहाई में बद हुए।
व्यथित क्षुब्ध कवि के उर से ये सहसा निःसृत छंद हुए ॥५१॥

शासन ने सोचा है प्रबल इस ज्वाला को,
फूँक से उडा के फिर शोषण चलाने को।
अत्याचारी सैन्य के भयद अस्त्र शस्त्रो से,
देश की स्वतंत्रता का जीवन बुझाने को।

किन्तु आज चूम कर फाँसी की रस्सियों को,
अमर महेन्द्र ने जो होड यों लगाई है।
आज क्रान्तिदीपक पर हँस हँस शलभतुल्य,
मिटने की नित्य नई साध ही जगाई है ॥५२॥

विनाश

होंगे न महेन्द्र कल उनके हितार्थ तथा,
दिन रात प्रात का स्वरूप एक होगा ही।
स्वजन कुटुम्बी आर्त दुखी देशवासी किन्तु
शासन के सुख का स्वरूप एक होगा ही।
मुदेंगे कमल मुरझायेंगे सुमन-वृन्द,
किन्तु कण कण में सुगंधि भार होगा ही।
चूमेंगे अनेकों अत्याचारियो की रस्सियों को
किन्तु जन्मभूमि में तो स्वाधिकार होगा ही ॥५३॥

मुक्ति-पथ

सर्ग १६

जग के कानों में अब भी था मार मार का क्रन्दन ।
वह कॉप रहा था अब भी, भय से पीडित उसका मन ।
अब नैश दैत्य बढता था, निज काले पंख पसारे ।
छाया बढती जाती थी, उसके तम तोम सहारे ॥१॥

मिट गया प्रकाश जगत से, छा गई निशा वह काली ।
फुफकार उठी वह नागिन, वह विषमय प्रबला व्याली ।
तूफान चल रहा भीषण, हर हर हहराता जग को ।
जल-प्लावन हुआ भयकर, जलमग्न बनाता मग को ॥२॥

भय हुआ प्रलय था आया दुख-भार सघन होता था ।
बंगाल देश के दुख पर मानो नभ भी रोता था ।
वह शस्यश्यामला धरती थी आज नग्न बेचारी ।
प्रतिद्वन्द्वी डाकेवालों से दलित पीडिता नारी ॥३॥

जापानी बाम्बर आते मित्रो के यान लडाके।
जाते अशाति फैलाके उत्साह शक्ति मिटवा के।
चिर दयामयी-पुरवैया, आई ले गागर रीता।
जनता-चातक का जीवन, घन लखने मे ही बीता ॥४॥

मच गया त्राहि-मय क्रन्दन, जनता ने कर फैलाया।
शासन ने सोचा इसमे, भिखमगों का छल छाया।
था क्रान्तिशील बङ्गाली जनता को पाठ पढाना।
उनको अतीत विद्रोहो का कडवा स्वाद चखाना ॥५॥

शासन चुप होकर बैठा वाणी में सेवा का छल।
सब अन्न देश का बन्दी बनता सेना का सम्बल।
कट्रोल लगा था प्राणों पर श्वास न चलने पाता।
थी रेल कहाँ खाली जो प्रान्तो से अन्न मँगाता ॥६॥

था यातायात नियन्त्रित भारत रक्षा करनी थी।
सूखी सी भारतमाता की अस्थि चूर्ण करनी थी।
भूखी जनता का क्रन्दन-स्वर प्रबल हुआ अति भैरव।
भारत भर मे वह गूँजा बन गया देश यह रौरव ॥७॥

था महाकाल ने फेंका निज नागपाश अभिमानी।
दुर्भिक्ष बना शासन की निर्दयता भरी कहानी।
दाने-दाने को तरसा वह अनल बाण बरसा कर।
आँखें मूँदे चलता था शासन निज बल दरशा कर ॥८॥

हो रहे गॉव थे खाली जनता नगरो को जाती।
दानी उदार लोगों की भिक्षा पर पलने आती।
सडको पर जङ्गम-शव का लग रहा आज था मेला।
गीदड़ कौवे गृद्धों का चल रहा साथ ही रेला ॥९॥

संध्या आती तो यात्री सडकों पर पड जाते थे।
उनके कंकाल-शरीरों से गीदड़ लड़ जाते थे।
आता दिन कौवे सूखी आँते निकाल ले जाते।
अवशेष मरण पथ पर फिर साहस कर चलते जाते ॥१०॥

होटल के निकट वमन पर वे भूखे नयन पसारे।
टुकडों पर श्वान-सदृश थे लडते मानव बेचारे।
नारियाँ सतीत्व लुटातीं मुट्ठी-मुट्ठी दाने पर।
माताये शिशु खा जातीं निज घृणित प्राण पाने पर ॥११॥

मरते थे कुत्ते कीडे अपनी मानवता हारे।
था मरण परम परिचित सा फिरते थे सब मनमारे।
दुख उन दयनीय जनों पर जो पथ चलते गिर जाते।
शव की दुर्गन्ध बढाते मुर्दे कराहते आते ॥१२॥

कलकता नगर के पथ पर अब भी मोटर चलते थे।
अब भी मदिरालस दृग थे, मधु के प्याले ढलते थे।
अब भी उन नाट्यगृहों में नर्तन विलास होता था।
अब भी उन भोजगृहों में ऐश्वर्य लास होता था ॥१३॥

इस भाँति वंग केशव पर शासन आनन्द मनाता।
वन्दी शुक्ला का अन्तर सुन समाचार अकुलाता।
नरमेध यज्ञ में ऐसे कुछ और पतित सहयोगी।
थे मातृभूमि-विद्रोही जिनकी चिर याद रहेगी ॥१४॥

चाँदी के टुकडे लेकर वे कफन बेचने वाले।
वे अन्नचोर अपराधी वे लाभ ऐंठने वाले।
वे यम के प्रिय दरबारी, निर्दयी, कुटिल हत्यारे।
कर रहे नग्न ताण्डव वे शासक-व्यभिचार-सहारे ॥१५॥

दिन-दिन मोटे होते थे वे गृद्ध अधम शव-भोजी।
नरमास नारिलज्जा का विक्रय ही जिनकी रोजी।
मर चुके लाख पैंतिस जो उन पर जननी को दुख है।
परतन्त्र देश को जगती में मिलता कभी न सुख है ॥१६॥

पर किया देश ने चन्दा धन-अन्न-वस्त्र-आयोजन।
उस अनलदाह में जल-सा पहुँचा विलम्ब से भोजन।
पर अब विकराली काली थी तृप्त मुण्डमाला से।
शमशान शान्त था अब तो नरमेध-चिता-ज्वाला से ॥१७॥

चेतना राष्ट्र में आई निर्माण-योजना-आँधी।
तब देश-हितैषी जागे कारा में बन्दी गाँधी।
अब तो भय हटता जाता, कुछ साँस देश में आती।
अब घोर निराशा रजनी मदमाती ढलने जाती ॥१८॥

इस काल-रात्रि मे रजनी के कितने रत्न चुराये।
गुरुदेव राष्ट्र की आत्मा के प्रहरी हुए पराये।
वाग्मी विजयी मद्रासी वह सत्यमूर्ति प्रतिभामय।
अब चला गया था मुस्लिम अल्लाह बख्श वह निर्भय ॥१६॥

बापू की दाईं बाईं थी भुजा-युगल वे टूटी।
उनके भावो की दुनिया थी कुटिल काल ने लूटी।
पर तम का चरम हुआ था, अब था प्रकाश अनुगामी।
अब विश्व-समर के नभ पर था प्रजातन्त्र जयगामी ॥२०॥

बंदी शुक्ला घटनाओ का घटाटोप लखते थे।
उनके वे बंदी साथी भी देख मोन रखते थे।
अब भी बाहर से प्रतिमा आन्दोलन-सूत्र चलाती।
अब भी फरार जन के हित थी पुलिस नित्य अकुलाती ॥२१॥

मॉ बहनो के जीवन पर अब भी दानव की माया—
छाई रहती थी जननी पर कुटिल काल की छाया।
पर कहीं कही अब शव की पसली में कपन आया।
तारे भय के अब डूबे ऊषा-प्रकाश लहराया ॥२२॥

आया वसंत कुछ विजडित पद से जग के आँगन में।
कुछ डरा हुआ सकुचाया वधशाला के प्रागण में।
पर समझ व्यर्थ अब अपनी दानवी क्रिया मतवाली।
शासन ने मुक्त बनाई पावन विभूति छवि-वाली ॥२३॥

बापू रजनी के तम से अरुणाभा लेकर आया।
नूतन प्रकाश की सुखमय मृदु आभा लेकर आया।
बापू पीडित मानवता को आशा लेकर आया।
जग के आँगन पर शीतल घन-छाया बनकर छाया ॥२४॥

भय आशका का दानव भागा जीवन से सत्वर।
सुख के अम्बर से झरता उल्लास हास का निर्झर।
अलि ने गुञ्जन से पिक ने कूजन से नभ को सींचा।
रवि ने निज किरण-करों से तम का जल सकल उलीचा ॥२५॥

शमशान-शाति थी वदी अव जीवन के वंधन में।
अव नई प्रभा लहराई जननी के पद-वंदन में।
रवि ने प्रचार के तम को झूठे प्रवाद के घन को।
भेदा निज सत्य-अहिंसा की किरणों से वंधन को ॥२६॥

आज्ञा दी, 'सैनिक भोले जो छिपे नीति-वश भागे।
हो प्रकट असत्य-अनय से वे हों न कुटिलता पागे।'
इस भाँति क्रान्ति की ज्वाला पर था विवेक का पानी।
इस जादूगर को रचनी थी नई सृष्टि अभिमानी ॥२७॥

उस ओर रूस ने जर्मन भीषिका प्रवल मतवाली।
अपने जनबल से अव वह अभिमानी शक्ति दवाली।
इस भाँति जगत के नभ पर भी नव ऊषा लहराई।
जर्मन जापानी भूतों पर प्रलय-घटा घहराई ॥२८॥

शासन पर अपने छल को सच का प्रमाण देने को।
कुछ यंत्र कर रहा ढीला न्यायी का यश लेने को।
अब मुक्त हुए कुछ बंदी थे बिना शर्त कारा से।
उनका अंतर आलोकित अब नई प्रभाधारा से ॥२६॥

राजेन्द्र आज घर आये ले मंगल की मधु माया।
उनके आनंद-सदन में नूतन प्रकाश लहराया।
श्री राय बहादुर को भी वह गौरव आज सुहाया।
भारत का पतझर बीता ऋतुराज आज फिर आया ॥३०॥

थे आज शुक्ल भी बाहर जनता के एक सहारा।
कृषकों, श्रमिकों ने पाया अपनी आँखों का तारा।
अपने रहस्य के जग से प्रतिमा भी बाहर आई।
स्वातंत्र्य-गगन मे प्रतिभामय किरण-प्रभा लहराई ॥३१॥

रामू उसका सहचर था, संकट के दिन का साथी।
वह था मशाल-सा चलता जलती नव क्रान्ति-प्रभा थी।
अब नई हुई थी धरती था आज नया नभ नीला।
स्वातंत्र्य-मलय बहता था, था प्रतिक्रिया-मुख पीला ॥३२॥

इन विगत दिनों मे जनता साहस खो चुकी अकेली।
थी सूख रही मुरझाई उसके जीवन की बेली।
अब बापू के रचनात्मक कार्यों के जल से सींचा।
तत्पर सेवा से उनके नैराश्य रोग को खींचा ॥३३॥

संघर्ष और रण-युग था बीता विधान-युग आया ।
अब नई प्रगति के रथ का झंडा नभ में लहराया ।
निज कार्य-क्षेत्र निर्धारित कर क्रान्ति-चतुष्टय त्यागी ।
थे देख रहे तन्मय हो वैधानिक गति-अनुरागी ॥२४॥

मङ्गल

सर्ग २१

अस्त हो चला रवि धीरे-धीरे सध्या हो आई।
धीरे धीरे अखिल विश्व में नीरवता लहराई।
प्रतिमा के मन का सूनापन बिखर बिखर कर छाया।
उर का कौन अभाव दृगो के कोने में भर आया॥ १॥

क्रमशः हुआ प्रकट अम्बर मे नीरव सध्या तारा।
प्रतिमा को मानो यह कोई दैवी मिला सहारा।
कब तक यह एकाकीपन इस तरह रहेगा छाया।
प्राणों पर अवसाद-भार सा मैंने तो भर पाया॥ २॥

उठी लहर मन की रामू की आई याद कहानी।
मन की कितनी सी गाँठों की उलझन नई पुरानी।
वह मनु का बेटा मानव पृथ्वी का एक निवासी।
जिसके एक एक इंगित में मेरा प्राण प्रवासी॥ ३॥

एक एक दिन का परिचय, परिचय की बढती धारा ।
प्राणों की अन्तःसलिला का झलका नहीं किनारा ।
उसके मन की लहर लहर पर मेरे मन की छाया ।
उसको वैसा देख रही हूँ जैसा नित्य बनाया ॥ ४ ॥

आज बडी सुन्दर लगती हो उसका उस दिन कहना ।
पुन सकुचित होकर मन के मौन भाव में बहना ।
'ऐसा नहीं कहा जाता, पागल' मेरा समझाना ।
उसका लज्जा जडित हृदय से स्वयं दूर भग जाना ॥ ५ ॥

फिर उसका उस दिन डरते डरते यह प्रश्न उठाना ।
कोई नहीं दुराव न जिसमे कुछ भी कहीं छिपाना ।
कब तक और अकेली नेताजी तुमको रहना है ।
दुष्ट, बात क्या हुई अरे यह भी क्या कुछ कहना है ॥ ६ ॥

आज देखती हूं वह मेरे मन मे खेल रहा है ।
पूर्व जन्म का जैसे उसका मेरा मेल रहा है ।
कितने पुरुषो का परिचय है याद आज आती है ।
ये चंचल आँखें रामू पर ही जा रुक जाती हैं ॥ ७ ॥

श्री राजेन्द्र रहा था उसको दूर क्षितिज का तारा ।
सुमन स्वर्ग का दिव्य नित्य पर कसता रहा किनारा ।
शुक्ल क्रान्ति का अनल ज्वाल था शुद्ध बुद्ध वैरागी ।
रामू मे पर अपनेपन की धधक रही थी आगी ॥ ८ ॥

मधुर स्पर्श कर चला गया ऋतुराज-पवन का झोंका।
जैसे उसने प्रतिमा के एकाकी मन को टोंका।
पुनः स्पर्श, यह कौन अरे तू रामू है कब आया।
एक लहर में रोमाचित सारा शरीर हो आया॥ ९॥

हाथ हाथ मे लेकर प्रतिमा फिर रामू से बोली।
देखो ऐसी खुली जगह में करते नही ठिठोली।
कोई कहीं देख लेगा तो बात बिगड जायेगी।
तुम्हें नहीं मालूम आपदा क्या क्या फिर आयेगी॥ १०॥

रामू बोला 'देखो, मुझसे करो न बहुत बहाना।
मुझे चराना सहज नहीं है, दुनिया सहज चराना।
मुझे तुम्ही ने जैसा चाहा वैसा पाठ पढाया।
मेरे रुके हुए चरणो को चाहा जिधर बढाया॥ ११॥

मै जब पास तुम्हारे आऊॅ दुनिया को न बुलाओ।
मेरे लिए एक तुम केवल तुम दुनिया बन जाओ।
मै छाया हूॅ, मुझको क्या है अपना और पराया।
जब से ऑख खुली है मै हूॅ शरण तुम्हारी आया॥ १२॥

× × ×

प्रतिमा के विवाह का दिन था, शुक्ल कुॅवर थे आये।
थे अतीत के चलचित्रो से अतर्पाट सजाये।
नेताओं के स्नेह-समन्वित आशीर्वचन सुनाये।
सरल शुभ्र पावन आभा से मगल मोद मनाये॥ १३॥

प्रतिमा रामप्रताप आज थे एक क्रान्ति के नेता।
वे मानस संघर्ष समर के पावन प्रणय विजेता।
प्रतिमा रूप-शील गौरव से आज झुकी शरमाई।
अपने धीर प्रणय-सहचर के साथ सभा मे आई॥ १४॥

आज हृदय-स गर में उसके उठतीं अमित तरंगें।
भर जातीं उसके अतर में नव उत्साह-उमगें।
नीचे दृग कर मधुर स्वरों में मद मद कुछ बोली।
उसने स्वजनों के अतर में मधुर सुधा यों घोली॥ १५॥

आवाहन कर राष्ट्र देव का किया अमर यह निश्चय।
दोनों ने प्रण किया करेंगे हम नवयुग का समुदय।
धन्य धन्य जय जय नादों से गुंजित मण्डप सारा।
उमड रहा आह्लाद सरोवर तोडे कूल-किनारा॥ १६॥

घोषित हुई वेद की वाणी यज्ञ-अनल लहराया।
आज देश के कोने कोने में उल्लास समाया।
नवयुग के सजीव सर्जन का सपना सजग सुहाया।
सखियों ने मंगल गीतों से नभ का हृदय गुंजाया॥ १७॥

भारत जननि तुम्हारी जय हो।
हो प्रभात तम मिटा युगों का,
शीतल मलय वायु नव लहरी।
उडे मेघ वे प्रतिक्राति के,

उज्ज्वल विजय-पताका फहरी।
हों हम धीर वीरवर निर्भय,
तेरी कीर्ति अमर निश्चय हो।
भारत जननि तुम्हारी जय हो॥

धन-जन-धान्य पूर्ण हो सत्वर,
गोदी हरी भरी जननी की,
तिरती रहे समोद युगो तक
पावन सिद्धि तरी जननी की।
नव-विज्ञान-ज्ञान से घोषित
भारत का अम्बर अक्षय हो॥ भारत० ॥

हों विवेक-संगठन-समन्वित,
युवा वृद्ध बालक नर नारी।
आत्मबोध की नई ज्योति से,
जलते रहे सतत अविकारी॥
अब न एक क्षण को प्रकाश का।
कुत्सित अंधकार मे लय हो॥ भारत० ॥

पटे विषम-भेदो की खाईं।
वर्ण-वर्ग से हों स्वतंत्र जन।
मानव-मानव में लहराये।
सच्चा प्रेमपूर्ण मानवपन।

एक देश हो पुनः विश्व में,
सबका एक संघ समुदय हो ।। भारत० ।।
जय हो हिमकिरीटिनी तेरी,
सरित कण्ठ-भूषित जननी जय ।
जय हो सिंधु-धौत-पगतल माँ,
रत्न-गर्भधारिणि धरणी जय ।
जय हो ओ अध्यात्म-प्रवाहिनि,
जय हो, जय हो, जय हो, जय हो ।। भारत० ।।

मुक्ति

सर्ग २०

निशि का सन् सन् बन्द हुआ था, हल्का परदा तम का ।
अब प्राची में आशा-रवि का तेज अलौकिक चमका ।
ऊषा के अधरों पर आई नवजीवन की लाली ।
भाग छिपी इस नव प्रकाश से घोर निराशा-व्याली ॥१॥

आशा है करुणा की सुन्दर सहचरि नित्य नवीना ।
मूर्च्छा में नवचेतनता है सुख विश्राम प्रवीना ।
जीवन-श्रम से चूर और असफलताओं का मारा ।
जीवित रहता है आशे, पा तेरा मलय-सहारा ॥२॥

पग पग के काँटे पत्थर को तू है कुसुम बनाती ।
तू बाधाओं के हिमगिरि को निज स्मिति से पिघलाती ।
और जगत-जीवन पर सुख की छाया मृदुल बिछाती ।
आशा तू पतझर में मधुऋतु का संदेश सुनाती ॥३॥

मुक्ति

श्री विजयालक्ष्मी परिडत भारत-जननी की आशा ।
थीं विश्व-क्षितिज पर छाईं बन कर स्वाधीनता-सदाशा ।
प्रतिभा की दिव्य किरण बन जब जग के नभ पर आईं ।
मिट गई उसी क्षण जननी के मुख की दुःख की झाँई ॥४॥

साम्राज्यवाद के घन ने कुत्सित प्रचार-आडम्बर ।
कर सत्य प्रभा को छेंका पर अब निरभ्र था अम्बर ।
स्वातंत्र्य-देवि के स्वर से अमरीका का हर कोना ।
अब गूँज उठा फ्रिस्को में अंग्रेजी छल का रोना ॥५॥

इँगलैण्ड देश में अब थी जलती प्रकाश की ज्वाला ।
अनुदार वर्ग के छल का पिटता था वहाँ दिवाला ।
श्रमिकों ने जाना विजयी चर्चिल को युद्ध-प्रलापी ।
था प्रगतिशील लेबर दल जनता में नवल प्रतापी ॥६॥

एटली महोदय अब थे मत्री प्रधान सुविचारी ।
पैथिक लारेंस हुए थे भारत मत्री अधिकारी ।
घोषणा हुई भारत में होगा चुनाव जनता का ।
प्रतिरोध-दुर्ग टूटेगा, होगा विकास जनता का ॥७॥

श्रमिकों का स्वार्थ यही था, "भारत हो मित्र हमारा ।"
कच्चे पदार्थ हम पावें, विक्रय हो माल हमारा ।
अनुदार नीति से अब तो, था क्रान्ति-वेग बढता ही ।
भारत के रोष-प्रलय का नव क्रान्ति-मेघ चढता ही ॥८॥

चर्चिल अपदस्थ हुए थे केवल इस प्रण के द्वारा।
इसलिए श्रमिक-शासन का यह स्नेहिल नीति-दुधारा।
भारत ने भी उर-व्रण की वेदना असह्य भुलाया।
संघर्ष-दमन-युग का निज नैतिक अपमान मिटाया ॥९॥

अब जय का अमर तिरंगा फिर घर-घर पर लहराया।
फिर अब स्वदेश के नभ में उल्लास-मेघ नव छाया।
अवकाश मिला शासन को कुछ न्याय नाट्य दिखलाया।
आजाद हिन्द सेना को दिल्ली में गया बुलाया ॥१०॥

× × ×

नेता सुभाष जननी के सच्चे सपूत प्रणधारी।
राष्ट्रीय-सभा की निर्बल नयनीति के न सहकारी।
बंदी-गृह से निकले तो देखी परवशता व्यापक।
थी घोर निराशा अपनी नैतिक अवनति की मापक ॥११॥

देखी न शांति के द्वारा जब संभव माँ की रक्षा।
इस विश्व-प्रलय मे वे तो कर सके न मूक प्रतीक्षा।
रिपु का संकट है अपना स्वर्णिल सुयोग, यह माना।
उसकी उन्नति से आता संकट का पुनः जमाना ॥१२॥

इसलिए अमर बलिदानी ने कुशल व्यवस्था द्वारा।
अद्भुत रहस्य के पट से लाँघी भारत की कारा।
निज गुप्तचरों पर गर्वित शासन को दिया चुनौती।
उड़ गया कहाँ वह पंछी ? था जिसका नीड़ बपौती ॥१३॥

जर्मनी और इटली के कण कण की धूलि रमाते ।
स्वातंत्र्य-सुधा के अविरत अन्वेषण में मदमाते ।
वह घूम रहा था जननी की उन्नति का अनुरागी ।
उसके अन्तर में जलती थी देश प्रेम की आगी ॥१४॥

अब विभव-विरक्त बना था वह नव बन्दा वैरागी ।
रिपु के उर में था चुभता विष शूल-सदृश वह त्यागी ।
जब जापानी चीते ने भारत पर पंजा मारा ।
जब ब्रिटिश भूत था करता रक्षा से कुटिल किनारा ॥१५॥

अपने सैनिक जन को जब रिपु के पावक में झोंका ।
फिर भाग चले भय खाये पीछे मुड़कर न विलोका ।
जब वे असहाय अभागे वे नमक-हलाल सिपाही ।
रिपु के पंजे में आये तो नीति नवीन निबाही ॥१६॥

अब तक वे परदेशी के चंगुल के अस्त्र बने थे ।
जननी के जीवन के वे अति घातक शस्त्र बने थे ।
आई उनमें चेतनता भ्रममोह-निशा वह टूटी ।
उनको बिलखाई जननी अब दिखलाई दी लूटी ॥१७॥

आजाद हिन्द सेना का निर्माण हुआ बलिदानी ।
भारत-नभ के कण कण में, जिसकी है अमर कहानी ।
इस नयी मूर्ति में आया वह प्राण-प्रतिष्ठा-धारी ।
नेता सुभाष आ चमका बिजली सा रिपु-संहारी ॥१८॥

दिल्ली के लाल किले पर फहराकर अमर तिरंगा।
ये वीर बहाते जग में स्वाधीन शाति की गंगा।
नेता सुभाष जननी का पर अनुपम प्राण नगीना।
नभ अनल अनिल ने उसको कहते है छल कर छीना ॥ १६ ॥

अब उन बन्दी वीरों को नेहरू का मिला सहारा।
शासन के न्याय-अनय को इस नाहर ने ललकारा।
'आजाद हिन्द सेना का होवेगा बाल न बॉका।'
'हाँ बाल न बॉका होगा' यह स्वर गूँजा जनता का ॥ २० ॥

जयहिन्द युद्ध स्वर को जब नेहरू ने भी अपनाया।
भारत के कोने कोने में नया जोश लहराया।
छोटे छोटे बच्चों ने जयहिन्द कहा भय त्यागा।
बूढे जवान सबने मिल जयहिन्द घोष-वर मॉगा ॥ २१ ॥

जयहिन्द कहा धरणी ने जयहिन्द हुआ अम्बर में।
जयहिन्द घोष लहराया सागर की लहर लहर में।
कलकता नगर में जनता ने ली सीने पर गोली।
गर्वित मुसकाती जनता जयहिन्द गरज कर बोली ॥ २२ ॥

जल सेना के युवकों ने जयहिन्द कहा विद्रोही।
जातीय मान-रक्षा को वे हुए क्रान्ति-आरोही।
शासन में अपना बल था पर भय विप्लव का भीषण।
दहलाता उनके उर को विद्रोह वज्र का तर्जन ॥ २३ ॥

इसलिए देश में आये उनके सदस्य कुछ प्रतिनिधि ।
देखी भीतर ही भीतर जलती ज्वाला की गति-विधि ।
वे गये अमर त्रय आये लारेंस क्रिप्स सम्मानी ।
वे अलक्जेन्द्र भी आये सत्वर उदार महिमानी ॥ २४ ॥

अब चली नीति की वार्ता, नेता अगणित बन आये ।
हठ के अध्वर्यु जिना थे गौरव का रंग जमाये ।
ये मंत्रीगण तो सुनते थे, सबके मन की बातें ।
करनी थी उनको अपने साम्राज्यवाद की घातें ॥ २५ ॥

मुस्लिम शासन में सम हो हिन्दू काँग्रेस के साथी ।
नौ सत्ताइस सम होगे; यह गणित-प्रभूत प्रभा थी ।
पर जिना सहन क्या करते मुस्लिम काँग्रेस दल में भी ।
क्या किरण-छटा वे सहते निज तम-अंतस्तल में भी ॥ २६ ॥

वे रूठ गये, जा बैठे अब कोप भवन के भीतर ।
जो मलाबार गिरि श्रेणी में था रहस्य-सा सुन्दर ।
केवल चर्चिल-दल बल पर संकेत नयन से करते ।
उनके मानस का ज्वर थे संकेत पवन से हरते ॥ २७ ॥

पर इसी बीच नेहरू ने शासन-सेवा स्वीकारा ।
मुस्लिम-ईसाई सबका उनको सहयोग-सहारा ।
जो बना सचिव-मण्डल था उसकी प्रतिभा-महिमा से ।
बन गये स्वयं केवल थे सैनिक महान् लघिमा से ॥ २८ ॥

उनका साम्राज्य पुराना अब हवा हुआ जाता था।
स्वाधीन राष्ट्र का नभ मे सुवितान तना जाता था।
इसलिए नीति के अपने लीगी मुहरे वे लाये।
जन-तन्त्र प्रगति-पथ के इन काँटो को आन बिछाये॥ २६॥

नेहरू को थी उत्सुकता बढ़ जाय देश का वैभव।
बढ जाय विश्व के मन मे स्वाधीन देश का गौरव।
पर वे निश्चय कर आये अवरोध-नीति का केवल।
उनको क्षण क्षण मिलता था वेवल का अनुपम सम्बल॥ ३०॥

थी असहनीय जनता को उनकी ये कुटिल क्रियायें।
थीं असहनीय नेताओ को उनकी नित्य कलायें।
उनके अभिमान-अनय की थीं अगणित अकथ कथायें।
एटली आदिक को भी थी ये दु.सह नीति-प्रथायें॥ ३१॥

इस हेतु नीति के पट को एटली ने शीघ्र उठाया।
तमचर चर्चिल को श्रमिको का न्याय नया दिखलाया।
वेवल विह्वल हो भागे आये नवीन अधिकारी।
माउण्ट वैटेन आये जिनको मानवता प्यारी॥ ३२॥

विष-व्रण वढता जाता था, नेहरू का धीरज छूटा।
सरदार वीर के संयम का बन्धन जाता टूटा।
था आज देश तो आकुल स्वातन्त्र्य पूर्ण लाने को।
निज जीर्ण भवन का सत्वर उद्धार करा पाने को॥ ३३॥

एटली ने दिया सँदेशा, अब हिंद छोड जाने का ।
जिन्ना को रहा अँदेशा, हिंदू से भय खाने का ।
जब घृणा-द्वेष का उनका, बढ चला कुटिल विष काला ।
नेहरू पटेल ने काटा वह सडा अंग विषवाला ॥३४॥

वह तीन जून का दिन था पन्द्रह अगस्त का नेता ।
जनबल था अब तो साथी पशुबल पर अमर विजेता ।
वह दिन मंगलमय आया जब नया सूर्य मुसुकाया ।
नूतन धरती के ऊपर जब नया नील नभ छाया ॥३५॥

जब जागा जन-गन-मन में उत्साह नवीन विजय का ।
जब भागा जन-गन मन से वह भूत निराशा भय का ।
साम्राज्यवाद ने त्यागा जब विवश विचार अनय का ।
जब व्यथित विश्व ने माँगा वरदान स्नेह-संचय का ॥३६॥

पन्द्रह अगस्त ने देखा शशि को निरभ्र स्त विमल था ।
पन्द्रह अगस्त ने पाया रवि मेघ-रहित उज्ज्वल था ।
था ज्योति प्रभासित जीवन, जन-गन-मन आज न उन्मन ।
पर सुमन आज कुम्हलाया था एक विषाद विभाजन ॥३७॥

राजेन्द्र सुदामा प्रतिमा रामू थे राष्ट्र-विधायक ।
वे सैनिक थे उस रण के जो बना आत्म-निर्णायक ।
देखते भाग लेते थे इस नूतन जयमङ्गल में ।
जनता जयगीत सुनाती उन्मत्त आज जनबल में ॥३८॥

गीत

आज विकसित हो गया है देश का जलजात जीवन ।
दासता की काल निशि में, था मधुप बंदी हमारा ।
दिव्य बापू के उदय से किरण ने तम को प्रचारा ।
कंज कुड्मल खुल गया, अब हो रहा है मधुर गुञ्जन ॥ आज० ॥

मलय मारुत चल पडा है मधुर लहरों से भरा सर ।
गा रहा कलकल नवल उल्लास मय संगीत निर्झर ।
कट गया है आज सदियों से अनय का घोर बंधन ॥ आज० ॥

अब धरा पर दभ का अभिमान का अवसान होगा ।
शक्ति के उन्माद से पीडित जनों का त्राण होगा ।
अब निराशा भय विवशता से नहीं होगा व्यथित मन ॥ आज० ॥

मुक्त मानव को प्रगति का अब सहज अवकाश होगा ।
देश में सहयोग, प्रेम-प्रतीति का अब लास होगा ।
राष्ट्र के निर्माण में सब वलि करेंगे आज तन मन ॥ आज० ॥

विश्व मे अब भय मिटेगा शांतिमय विश्वास होगा ।
दीनता छल दमन का अब दूर जग से त्रास होगा ।
देश से संदेश लेगा न्याय का अब जग अकिंचन ॥ आज० ॥

शेष-कथा

संध्या थी अति शीत शिशिर की आज शिथिल था जीवन ।
प्रतिमा आज विषाद वदन से बैठी थी कुछ उन्मन ।
रवि उदास था काले काले मेघ खण्ड लघु छाते ।
उसके मानस में पीडा की हलचल नई उठाते ॥१॥

रामप्रताप स्वयं उलझा था किन नवीन भावों में ।
उठती थी कुछ नई टीस अब उसके उन घावों में ।
जिनसे छिन्न भिन्न होता था आजादी का पौदा ।
बालक मूर्ख बिगाड रहे थे अपना नया घरौंदा ॥२॥

अपने मन का भाव छिपाकर वह विवेक से बोला ।
प्रश्न तुला में उसने प्रतिमा की पीडा को तोला ।
"क्यों है विमल वदन पर रानी यों विषाद की छाया ?"
किन्तु प्रश्न के साथ स्वयं उसका अतर भर आया ॥३॥

"पूछ रहे हो, क्या प्रियतम क्यों हृदय कमल कुम्हलाया ?
देख रहे हो, क्या स्वदेश में है कितना विष छाया।
क्या वह भीषण क्रान्तिकाल की ज्वाला पर हँस चलना।
क्या उल्लास-हास-आशा सब रही क्षणों की छलना ॥४॥

बापू की वह त्याग-तपस्या जनता की अभिलाषा।
कृषक श्रमिक नवयुवक जनो की प्रबल शक्ति की भाषा।
क्या सब केवल आत्मघात हत्या के व्यापारो मे।
होगी सीमित मानवता के पशुवत् व्यवहारों मे ॥५॥

क्या है याद अभी उस दिन जब राष्ट्रध्वजा लहराई।
जनता मे उल्लास गर्व की नूतन ज्योति समाई।
देश-विभाजन था पर आशा थी नरमेध बचेगा।
किन्तु ज्ञात था नहीं कि दानव क्या विध्वंस रचेगा ॥६॥

अब पजाब प्रान्त पर क्या क्या बीती कौन बताये।
जब मानव को मानव ही टुकडे टुकडे खा जये।
जहाँ पिता के आगे कन्या का सतीत्व लुटता हो।
जहाँ निरीह मूक शिशु निर्दय किर्चों पर उठता हो ॥७॥

जहाँ जलाई जाती निशिदिन मानवता की होली।
जहाँ चलाई जाती निशिदिन पडोसियों पर गोली।
जहाँ रचाया जाता निर्मम स्वाँग न्याय-प्रियता का।
जहाँ ढहाया जाता निर्भय भवन सदाशयता का ॥८॥

त्रस्त नारि नर छोड़ देश वह शरणार्थी हो भागे।
तजकर सुख परिवार विभव सब लेकर घृणा अभागे।
हो उन्मूलित मानवता थी राह भूलकर फिरती।
कैसे भारतमाता ऐसे विकट दुखों से तिरती॥ ९॥

बापू ही इस काल रात्रि के एक अचल ध्रुवतारा।
बापू ही इस महानाश से रक्षक एक सहारा।
पर उदार प्रतिशोधहीनता का निश्चय प्रण लेकर।
अभी शांत नरमेध कर रहे थे अनशन व्रत लेकर॥ १०॥

राम प्रताप मूक सुनता था दुःख की करुणा गाथा।
खोल रेडियो यंत्र लगा सुनने जग-परिचय क्या था।
ज्योंही हुआ प्रकाश यंत्र में जग में था अँधियारा।
बापू को गोली से पागल छीन गया हत्यारा॥ ११॥

प्रतिमा मूर्छित हुई न रामू को अग जग दिखलाता।
हाहाकार मचा अंतर में प्राण विवश अकुलाता।
'बापू गये देश की आत्मा ही शरीर से भागी।
बापू ने बलि दिया न धधके और द्वेष की आगी' ॥ १२॥

फैल गया दावाग्नि सदृश यह समाचार दुखकारी।
जनता चली देखने कैसे थी विधि गति-हत्यारी।
जन जीवन यह कटे वृक्ष सा गिरता था भहराता।
आज देश पर नव संकट का घनमण्डल घहराता॥ १३॥

आकर लोग पूछते विह्वल क्या सच है यह वाणी।
आज अनाथ बिलखते क्यो हैं ये विमूढ सब प्राणी।
बापू अमर भला जग जन के मन में नित्य निवासी।
बापू अजर भला क्या होगे उनके प्राण प्रवासी ॥ १४ ॥

'बापू अमर' कहा धरती ने सिर धुनते अकुलाते।
'बापू अमर' कहा अम्बर ने उल्कापात कराते।
बापू नीलकण्ठ कलियुग के जग के अति हितकारी।
आज स्वर्ग था धन्य धरा थी दीन अनाथ विचारी ॥ १५ ॥

आज जवाहर ने खो दी थी अपनी उज्ज्वल छाया।
आज पटेल शक्ति का सम्बल लुटा परम अकुलाया।
आज देश के कण कण में थी जो विषाद की छाया।
उससे विश्व व्यथित विह्वल था घर घर शोक समाया। १६ ॥

राजघाट में ली यमुना ने देवो की वह काया।
गंगा सरयू सरिता सर मे उसका तेज समाया।
अस्थि-विसर्जन को प्रयाग में देव-पुष्प जब आया।
श्रद्धाजलि देने को जनता का सागर लहराया ॥ १७ ॥

गंगा यमुना के सगम में खड़े अमित नर नारी।
श्री राजेन्द्र सुदामा प्रतिमा रामप्रताप दुखारी।
सबने श्रद्धा-शपथ ग्रहण की हो अटूट प्रणधारी।
बापू के पथ पर चलकर हम करें जगत अविकारी ॥ १८ ॥

बापू दिव्य देह से अद्भुत निज आलोक दिखाते।
कण कण में हो अमर समाते, नव संकल्प उठाते।
श्रम-सेवा निर्माण योजना से कर नवयुग समुदय।
अब तम से प्रकाश में लायेंगे स्वदेश को निश्चय॥ १६॥

हमारी प्रकाशन-सूची

१. गांधीवाद की रूपरेखा २)
२ योग के चमत्कार (अप्राप्य)
३. अहवादी की आत्मकथा (अप्राप्य)
४ भक्ति-तरंगिणी (अप्राप्य)
५ घर की रानी १॥)
६. आनन्दनिकेतन २॥)
७. चारुमित्रा २।)
८. शृंखला की कड़ियाँ २॥)
९. स्त्रियो की समस्याएँ १॥)
१०. भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा ॥)
११. हमारे नेता २॥)
१२. गांधीवाणी ३)
१३. नई कला २)
१४ अमृतवाणी १॥)
१५ विजयपथ १॥।)
१६. भारत का भाग्य १॥)
१७. वेदी के फूल ॥।)
१८ नारी : गृहलक्ष्मी २॥)
१९. नारी-जीवन १)
२०. कन्या १)
२१. प्राचीन कवियों की काव्य-साधना २॥)
२२. जीवनयज्ञ २)
२३. सेवाधर्म २।)
२४. समग्र ग्रामसेवा ८)
२५. गांधी मार्ग २॥)
२६. अहिंसक क्रान्ति ॥=)
२७. कटघरे से पुकारती वाणी १)
२८. बन्दी युग २॥)
२९. हमारे स्व० राष्ट्रनिर्माता ३॥)
३०. पथिक ।॥)
३१. बुद्ध ॥)
३२. चद्रगुप्त ॥)

साधना-सदन की पुस्तकें पढना जीवन में प्रकाश और शक्ति को निमंत्रण देना है ।

सा ध ना - स द न

इलाहाबाद